ॐ

परमात्मने नमः

सम्यक्प्रभा

(परमपूज्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
परमागम श्री प्रवचनसार की गाथा 99, 100, 101 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन)

गुजराती संकलन :
अमृतलाल नरसीभाई सेठ
सम्पादक, सद्गुरु प्रवचनप्रसाद (हस्तलिखित दैनिक)
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्रथम आवृत्ति - 1000 प्रतियाँ

विक्रय मूल्य -

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334

2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820
   Email - vitragva@vsnl.com

3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)

4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458

5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044

6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)

7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां,
   निर्मला कोन्वेन्ट रोड, राजकोट-360007
   फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

प्रकाशकीय

परम पूज्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा प्रणीत श्री प्रवचनसार परमागम के ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार की गाथा 99 से 101 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के वस्तुस्वभाव की मर्यादा दर्शक विशिष्ट प्रवचनों का प्रस्तुत संकलन प्रकाशित करते हुए हम अत्यन्त हर्षित हैं।

इन प्रवचनों में पूज्य गुरुदेवश्री ने पदार्थ के उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप को जिस सूक्ष्मता के साथ समझाया है वह प्रत्येक आत्मार्थी के लिये अत्यन्त प्रयोजनभूत विषय होने से बारम्बार स्वाध्याय करनेयोग्य है।

इन प्रवचनों का गुजराती भाषा में संकलन तत्कालीन समय में सोनगढ़ से प्रकाशित होनेवाली श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद हस्तलिखित दैनिक पत्रिका में हुआ था। जिन्हें बाद में आत्मधर्म में भी प्रकाशित किया गया था। प्रस्तुत गुजराती संकलन का श्रमसाध्य कार्य श्री अमृतलाल नरसीभाई सेठ ने सम्पन्न किया था। जिनके इस प्रयास से पूज्य गुरुदेवश्री की यह अमूल्य धरोहर आज हमें सहज सुलभ हुई है। इन प्रवचनों की उपयोगिता को लक्ष्यगत रखते हुए इनको पुस्तकाकाररूप से व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया है। जिस कार्य को पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) ने सम्पन्न किया है।

सभी जीव इन प्रवचनों में प्रकाशित वस्तुस्वरूप को समझकर स्वभावसन्मुखता प्रगट करें, यही भावना है...

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई

निवेदन

सम्यक्प्रभा नामक पुस्तक का विषय तत्त्वदृष्टि से अत्यन्त गम्भीर और रहस्यपूर्ण है। इसमें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री प्रवचनसार की गाथा 99 से 101 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने जो सूक्ष्म न्याययुक्त अपूर्व प्रवचन पूर्व में प्रदान किये थे और जो सद्गुरु प्रवचनप्रसाद तथा आत्मधर्म में भी पूर्व में प्रकाशित किये गये थे, उन्हें यहाँ प्रकाशित किया गया है।

उक्त गाथाओं में आचार्यदेव ने श्री जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्त उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का स्वरूप अद्भुत रीति से वर्णन किया है। इन गाथाओं में से गाथा 99 की टीका में श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने विस्तारक्रम और प्रवाहक्रम का अलौकिक रीति से स्पष्टीकरण किया है तथा प्रत्येक परिणाम स्वकाल में स्व-रूप से उपजता है यह सिद्ध किया है। गाथा 100 में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य एक ही समय में होते हैं, इनका अविनाभाव सम्बन्ध है, ऐसा विस्तारपूर्वक समझाया है और किसी भी द्रव्य का अकेला उत्पाद, अकेला व्यय अथवा अकेला ध्रौव्य मानने में आनेवाले अनेक प्रकार के दोष आते हैं ऐसा भी दर्शाया है और 101 में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से भिन्न पदार्थ नहीं है ऐसा सिद्ध किया है।

इन गाथाओं का विषय गहन होने पर भी पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी सुबोध और सुस्पष्ट शैली से उसे सरल पद्धति से समझाया है तदर्थ गुरुदेवश्री का अनन्त उपकार मानते हैं।

ऐसे सुन्दर प्रवचन सद्धर्म प्रेमी भाईश्री जयन्तीलाल हीराचन्द भंसाली, जामनगर के स्मरणार्थ उनके परिवारीजनों की ओर से प्रकाशित किये गये हैं तदर्थ उन्हें धन्यवाद है।

इन प्रवचनों में दर्शाये हुए वस्तुस्वरूप को यथार्थरूप से समझकर-विचारकर, मुमुक्षु निज आत्मा में 'सम्यक्‌प्रभा' प्रगट करें, यही भावना।

रामजी माणिकचन्द दोशी

सोनगढ़, 25-12-1972

भूतपूर्व प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़

अनुक्रमणिका

प्रवचनसार, गाथा-99	6
प्रवचनसार, गाथा-100	84
प्रवचनसार, गाथा-101	115

अर्पण

हे परमपूज्य गुरुदेव!

श्री जिनप्रवचन के सारभूत उत्पाद-व्यय -ध्रुवस्वभाव तीन परिणामी और परिणाम का अपूर्व भाव, स्वतन्त्र स्वरूप समझाकर आपने आत्मा के अनुभव का मार्ग बहुत ही सुस्पष्ट किया है। आपकी इस निष्कारण करुणा के प्रति निज हितार्थ यह **सम्यक्प्रभा** पुस्तक आपको अत्यन्त भक्तिभाव से अर्पण करते हैं।

प्रकाशक

ॐ

परमात्मने नमः।

सम्यक्प्रभा

(परमपूज्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
परमागम श्री प्रवचनसार की गाथा 99, 100, 101 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन)

प्रवचनसार, गाथा-९९

अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वेऽपि सद्द्रव्यं भवतीति विभावयति -

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो।।९९।।

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः।।९९।।

इह हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति द्रव्यम्। स्वभावस्तु द्रव्यस्य ध्रौव्योत्पादोच्छेदैक्यात्मक-परिणामः। यथैव हि द्रव्यवास्तुनः सामस्त्येनैकस्यापि विष्कम्भ-क्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः प्रदेशाः, तथैव हि द्रव्यवृत्तेः सामस्त्येनैकस्यापि प्रवाहक्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः परिणामाः। यथा च प्रदेशानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनो विष्कम्भक्रमः, तथा परिणामानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनः प्रवाहक्रमः। यथैव च ते प्रदेशाः स्वस्थाने

स्वरूपपूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तु-तयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति, तथैव ते परिणामाः स्वावसरे स्वरूपपूर्वरूपाभ्या-मुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूति-सूत्रितैकप्रवाहतयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहार-ध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति। यथैव च य एव हि पूर्वप्रदेशोच्छेदनात्मको वास्तुसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तुतयातदुभयात्मक इति; तथैव य एव हि पूर्वपरिणामोच्छेदात्मकः प्रवाहसीमान्तः, स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयातदुभयात्मक इति। एवमस्य स्वभावत एव त्रिलक्षणायां परिणामपद्धतौ दुर्ललितस्य स्वभावानतिक्रमात्त्रिलक्षणमेव सत्त्वमनुमोदनीयम्; मुक्ताफलदामवत्। यथैव हि परिगृहीतद्राघिम्नि प्रलम्बमाने मुक्ताफलदामनि समस्तेष्वपि स्वधाम-सूच्चकासत्सु मुक्ताफलेषूत्तरोत्तरेषु धामसूत्तरोत्तरमुक्ताफलानामुदयनात्पूर्व-पूर्वमुक्ताफलानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य सूत्रकस्याव-स्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति, तथैव हि परिगृहीतनित्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरेषूत्तरोत्तर-परिणामानामुदयानात्पूर्वपूर्वपरिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूति-सूत्रकस्य प्रवाहस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति।।९९।।

अब, यह बतलाते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य 'सत्' है—

जो है स्वभाव में अवस्थित, द्रव्य 'सत्' परिणाममय।
उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित, परिणाम द्रव्य-स्वभावमय॥

अन्वयार्थ : [**स्वभावे**] स्वभाव में [**अवस्थितं**] अवस्थित (होने से) [**द्रव्यं**] द्रव्य [**सत्**] 'सत्' है; [**द्रव्यस्य**] द्रव्य का [**यः हि**] जो [**स्थितिसंभवनाशसंबद्धः**] उत्पादव्ययध्रौव्य सहित [**परिणामः**] परिणाम है, [**सः**] वह [**अर्थेषु स्वभावः**] पदार्थों का स्वभाव है।

टीका : यहाँ (विश्व में) स्वभाव में नित्य अवस्थित होने से द्रव्य 'सत्' है। स्वभाव द्रव्य का ध्रौव्य-उत्पाद-विनाश की एकतास्वरूप परिणाम है।

जैसे द्रव्य का वास्तु[1] समग्रपने द्वारा (अखण्डता द्वारा) एक होने पर भी, विस्तारक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे प्रदेश हैं; इसी प्रकार द्रव्य की वृत्ति[2] समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे परिणाम हैं। जैसे विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है; उसी प्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक[3] है।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व -रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति[4] से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं; उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं। और जैसे वास्तु का जो छोटे से छोटा अंश पूर्वप्रदेश के विनाशस्वरूप है, वही (अंश) उसके बाद

---

1. द्रव्य का वास्तु = द्रव्य का स्व-विस्तार, द्रव्य का स्व-क्षेत्र, द्रव्य का स्व-आकार, द्रव्य का स्व-दल। (वास्तु = घर, निवासस्थान, आश्रय, भूमि।)
2. वृत्ति = वर्तना वह; होना वह; अस्तित्व।
3. व्यतिरेक = भेद; (एक का दूसरे में) अभाव, (एक परिणाम दूसरे परिणामरूप नहीं है, इसलिए द्रव्य के प्रवाह में क्रम है)।
4. अनुस्यूति = अन्वयपूर्वक जुड़ान। [सर्व परिणाम परस्पर अन्वयपूर्वक (सादृश्यसहित) गुंथित (जुड़े) होने से, वे सब परिणाम एक प्रवाहरूप से हैं, इसलिए वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं।]

के प्रदेश का उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुभय स्वरूप है (अर्थात् दो में से एक भी स्वरूप नहीं है); इसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्व परिणाम के विनाशस्वरूप है, वही उसके बाद के परिणाम के उत्पादस्वरूप है, तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

इस प्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणामपद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्य, स्वभाव का अतिक्रम[1] नहीं करता; इसलिए सत्त्व[2] को त्रिलक्षण[3] ही अनुमोदना[4] चाहिए – मोतियों के हार की भाँति।

जैसे – जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है, ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं इसलिए, और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिए, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता सूत्र अवस्थित होने से त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। इसी प्रकार जिसने नित्यवृत्ति[7] ग्रहण की है, ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य में, अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट) होते हुए समस्त परिणामों में पीछे पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के

---

1. अतिक्रम = उल्लंघन; त्याग।
2. सत्त्व = सत्पना; (अभेदनय से) द्रव्य।
3. त्रिलक्षण = उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीनों लक्षणवाला; त्रिस्वरूप; त्रयात्मक।
4. अनुमोदना = आनन्द से सम्मत करना।
5. नित्यवृत्ति = नित्यस्थायित्व; नित्य अस्तित्व; सदा वर्तना।

परिणाम प्रगट होते हैं इसलिए, और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिए, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ - प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है इसलिए 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश वह प्रदेश है; उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एक प्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप-ध्रुव रहता है। और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समयभेद नहीं है, तीनों ही एक ही समय में हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य, स्वभाव से ही सदा रहता है, इसलिए द्रव्य स्वयं भी, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है ॥99॥

❀ ❀ ❀

गाथा 99 पर प्रवचन

वीतरागी-विज्ञान में ज्ञात होता विश्व के ज्ञेय पदार्थों का स्वभाव

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ट्ठिदिसं भवणाससंबद्धो॥99॥

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः॥99॥

जो है स्वभाव में अवस्थित, द्रव्य 'सत्' परिणाममय।
उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित, परिणाम द्रव्य-स्वभावमय॥

यह गाथा अलौकिक है। इस गाथा में आचार्यदेव ने वस्तु के स्वभाव का रहस्य भर दिया है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त परिणाम, वह वस्तु का स्वभाव है और उस स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है, इसलिए द्रव्य सत् है।

यहाँ द्रव्य के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिये आचार्यदेव क्षेत्र का उदाहरण देते हैं। द्रव्य का—(आत्मा का) असंख्यप्रदेशी क्षेत्र एक साथ खुला-फैला हुआ है, इससे वह झट लक्ष्य में आ जाए, इसलिए उस क्षेत्र का उदाहरण देकर परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाते हैं।

जिस प्रकार द्रव्य को सम्पूर्ण विस्तारक्षेत्ररूप से लक्ष्य में लिया जाए तो उसका वास्तु (क्षेत्र) एक है, उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य के

तीनों काल के समय-समय के परिणामों को एक साथ लक्ष्यों में लिया जाए, तो उसकी वृत्ति एक है; तथापि जिस प्रकार क्षेत्र में प्रदेशक्रम है, उसी प्रकार द्रव्य के परिणमन में प्रवाहक्रम है। द्रव्य के विस्तार क्रम का अंश, वह प्रदेश है, उसी प्रकार द्रव्य के प्रवाहक्रम का अंश, सो परिणाम है।

देखो, यह ज्ञेय अधिकार है। समस्त ज्ञेय सत् हैं और उन्हें जाननेवाला ज्ञान है। समस्त ज्ञेय जैसे हैं, वैसे एक साथ ज्ञान में ज्ञात होते हैं। यहाँ आत्मा ज्ञान का सागर है और सामने स्व-पर समस्त ज्ञेयों का सागर भरा पड़ा है। बस, इसमें मात्र वीतरागता ही आयी; ज्ञेय में 'यह ऐसा क्यों' ऐसा राग-द्वेष या फेरफार करना नहीं रहा। अहो! आचार्यदेव ने प्रत्येक गाथा में वीतरागी बर्फी के पर्त लगाये हैं, प्रत्येक गाथा में से वीतरागता के टुकड़े निकलते हैं।

समयसार के सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में द्रव्य अपने क्रमबद्ध -परिणाम से उत्पन्न होता है—यह बात करके वहाँ सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण विषय बतलाया है—द्रव्यदृष्टि करायी है और यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है। इससे समस्त द्रव्य परिणमनस्वभाव में स्थिर हैं—ऐसा कहकर पूर्ण ज्ञान और पूर्ण ज्ञेय बतलाये हैं—ऐसे सर्व ज्ञेयों के स्वभाव और उन्हें जाननेवाले ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा करना, सो सम्यग्दर्शन है।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु और धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य पृथक्-पृथक् स्वयंसिद्ध पदार्थ हैं। सामान्यतया देखने पर उस प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र अखण्ड एक है, तथापि उस क्षेत्र के विस्तार का जो सूक्ष्म अंश है, वह प्रदेश है। छह द्रव्यों में से परमाणु और काल का क्षेत्र तो एक प्रदेश ही है। आत्मा का असंख्यप्रदेशी क्षेत्र

है। वह समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, उसका अन्तिम अंश प्रदेश है। इस प्रकार यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त है और सिद्धान्तरूप में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणामों को समझाना है। जिस प्रकार असंख्य -प्रदेशी विस्तार एक साथ लेने से द्रव्य का क्षेत्र एक है, उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की अनादि-अनन्त परिणमन धारा समग्रपने के द्वारा एक है और उस सम्पूर्ण प्रवाह का छोटे से छोटा एक अंश, सो परिणाम है। प्रत्येक परिणाम को पृथक् किये बिना समग्ररूप से द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाह को देखने पर वह एक है; अनादि निगोद से लेकर अनन्त सिद्धदशा तक द्रव्य का परिणमन प्रवाह एक ही है। जिस प्रकार सम्पूर्ण क्षेत्र एक साथ फैला हुआ पड़ा हुआ है, उसमें प्रदेशभेद से न देखा जाए, तो द्रव्य का क्षेत्र एक ही है। उसी प्रकार त्रिकाली द्रव्य के प्रवाह में परिणाम का भेद न किया जाए तो सम्पूर्ण प्रवाह एक ही है, और उस त्रैकालिक प्रवाहक्रम का प्रत्येक अंश, सो परिणाम है।

यहाँ प्रदेशों का विस्तारक्रम क्षेत्र अपेक्षा से है और परिणामों का प्रवाहक्रम परिणमन अपेक्षा से है। यहाँ क्षेत्र का दृष्टान्त देकर आचार्यदेव परिणामों का स्वरूप समझाना चाहते हैं।

यह ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयपदार्थों का वर्णन है। कोई कहे कि ऐसी सूक्ष्म बात कैसे ज्ञात हो ?—किन्तु भाई! यह सब ज्ञेय हैं, इसलिए अवश्य ज्ञात हो सकते हैं; और तेरा ज्ञानस्वभाव समस्त ज्ञेयों को जान सकता है। आत्मा ज्ञाता है और स्वयं स्वज्ञेय भी है तथा अन्य जीव—पुद्गलादि परज्ञेय हैं। उस ज्ञान और ज्ञेय को कैसा प्रतीति में लेने से सम्यक्त्व होता है, उसकी यह बात है।

धर्मास्तिकाय आदि के असंख्य प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे-फैले हुए हैं, आकाश के अनन्त प्रदेश ऐसे के ऐसे बिछे-फैले हुए हैं; उनमें कभी एक भी प्रदेश का क्रम आगे-पीछे नहीं होता; उसी प्रकार द्रव्य का अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम भी कभी खण्डित नहीं होता। प्रवाहक्रम कहकर आचार्यदेव ने अनादि-अनन्त ज्ञेयों को एक साथ स्तब्ध बतला दिया है। 'प्रवाहक्रम' कहने से समस्त परिणामों का क्रम व्यवस्थित ही है, कोई भी परिणाम-कोई भी पर्याय आगे-पीछे नहीं होती। इस प्रतीति में ही द्रव्यदृष्टि और वीतरागता है।

समय-समय के परिणामों का एकदम सूक्ष्म सिद्धान्त समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण दिया है, वह भी सूक्ष्म मालूम होता है। भीतर अपने लक्ष्य में यदि वस्तु का ख्याल आवे तो समझ में आ सकता है। 'यह स्वरूप इस प्रकार कहना चाहते हैं'—ऐसा अन्तर में अपने को भास होना चाहिए। समझने के लिए जीने (सीढ़ी) का दृष्टान्त लेते हैं:—जिस प्रकार क्षेत्र से देखने पर पूरा जीना ऐसे का ऐसा स्थित है, उसका छोटा अंश प्रदेश है; और जीने की लम्बाई से देखने पर एक के बाद एक सीढ़ियों का प्रवाह है, पूरे जीने का प्रवाह एक है, उसकी एक-एक सीढ़ी उसके प्रवाह का अंश है। उन सीढ़ियों के प्रवाह का क्रम टूटता नहीं है। दो सीढ़ियों के बीच में भी छोटे-छोटे भाग किये जायें तो अनेक भाग होते हैं, उस चढ़ते हुए प्रत्येक सूक्ष्म भाग को परिणाम समझना चाहिए। उसी प्रकार आत्मा असंख्य प्रदेशों में फैला हुआ एक है और उसके क्षेत्र का प्रत्येक अंश, सो प्रदेश है; और सम्पूर्ण द्रव्य का अस्तित्व अनादि

–अनन्त प्रवाहरूप से एक है तथा उस प्रवाह के प्रत्येक समय का अंश, सो परिणाम है। उन परिणामों का प्रवाहक्रम जीने की सीढ़ियों की भाँति क्रमबद्ध है, उन परिणामों का क्रम आगे–पीछे नहीं होता। इसलिए सबकुछ जैसा है, वैसा जानना ही आत्मा का स्वभाव है। इसके अतिरिक्त बीच में दूसरा कुछ डाले तो उसे वस्तु के सत्स्वभाव की श्रद्धा नहीं है। वस्तु जैसी हो, वैसा जाने–माने तो ज्ञान–श्रद्धा सच्चे हों न! वस्तु जैसी हो, उससे अन्य प्रकार से माने तो ज्ञान –श्रद्धा सच्चे नहीं होते; इसलिए धर्म नहीं हो सकता।

यहाँ क्षेत्र के दृष्टान्त से परिणाम का स्वरूप समझाया है।

जिस प्रकार द्रव्य का क्षेत्र का विस्तार, और विस्तारक्रम के अंश, सो प्रदेश। उसी प्रकार द्रव्य का परिणमन, सो प्रवाह और प्रवाहक्रम के अंश, सो परिणाम।

इस प्रकार क्षेत्र के दृष्टान्त द्वारा परिणाम सिद्ध करके एक बात पूरी की; अब उन परिणामों का एक दूसरे में अभाव बतलाते हैं।

'जिस प्रकार विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है, उसी प्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है।'

द्रव्य में विस्तारक्रम अर्थात् क्षेत्र अपेक्षा से विस्तार का कारण प्रदेशों का परस्पर भिन्नत्व है। पहले प्रदेश का दूसरे में अभाव, दूसरे का तीसरे में अभाव—इस प्रकार प्रदेशों के भिन्न–भिन्नपने के कारण विस्तारक्रम रचा हुआ है। यदि प्रदेशों का एक–दूसरे में अभाव न हो, और एक प्रदेश दूसरे प्रदेश में भी भावरूप से वर्तता

हो अर्थात् सब मिलकर एक ही प्रदेश हो तो द्रव्य का विस्तार ही न हो, किन्तु द्रव्य एकप्रदेशी ही हो जाए। इसलिए विस्तारक्रम करने से ही प्रदेश एक-दूसरे के रूप से नहीं है, ऐसा आ जाता है। 'विस्तारक्रम' अनेकता का सूचन करता है, क्योंकि एक में क्रम नहीं होता। अब, अनेकता कब निश्चित होती है ? सबमें एकता न हो किन्तु भिन्नता हो, तभी अनेकता निश्चित होती है और अनेकता हो, तभी विस्तारक्रम होता है; इसलिए विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है।

इसी प्रकार अब विस्तारक्रम की भाँति प्रवाहक्रम का स्वरूप कहा जाता है। 'प्रवाहक्रम' कहते ही परिणामों की अनेकता सिद्ध होती है, और परिणामों की अनेकता कहते ही एक का दूसरे में अभाव सिद्ध होता है। क्योंकि यदि एक का दूसरे में अभाव हो, तभी अनेकता हो। यदि ऐसा न हो तो सब एक ही हो जाए। इसलिए विस्तारक्रम में जिस प्रकार एक प्रदेश का दूसरे में अभाव है, उसी प्रकार प्रवाहक्रम में एक परिणाम का दूसरे में अभाव है। इस प्रकार परिणामों में एक का दूसरे में अभाव होने से, अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम रचा हुआ है, ऐसा द्रव्य का स्वभाव है; ऐसे परिणामस्वभाव में द्रव्य स्थित है।

यहाँ विस्तारक्रम तो दृष्टान्तरूप है और प्रवाहक्रम सिद्धान्तरूप है। दृष्टान्त सर्व प्रकार से लागू नहीं होता। पुद्गल और कालद्रव्य का विस्तार तो एकप्रदेशी ही है, इसलिए उसमें प्रदेशों के परस्पर व्यतिरेक का दृष्टान्त लागू नहीं होता, किन्तु प्रवाहक्रम का जो सिद्धान्त है, वह समस्त द्रव्यों में समान रीति से लागू होता है।

जैसे—25 कमरों के विस्तारवाली दालान कब होती है ? यदि वे कमरे क्रमानुसार एक-दूसरे से पृथक् हों, तब। उसी प्रकार आत्मा में असंख्यप्रदेशी विस्तारवाला क्षेत्र कब होता है ? जबकि एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में अभाव हो और वे समस्त प्रदेश विस्तारक्रम में अखण्डरूप से एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित हों।

इसी प्रकार (-प्रदेशों के विस्तारक्रम की भाँति) द्रव्य का अनादि-अनन्त लम्बा प्रवाहक्रम कब होता है ? जबकि एक परिणाम का दूसरे परिणाम में अभाव हो, तब। पहला परिणाम दूसरे परिणाम में नहीं है; दूसरा, तीसरे में नहीं है—इस प्रकार परिणामों में व्यतिरेक होने से द्रव्य में प्रवाहक्रम है। द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाह में एक के बाद एक परिणाम क्रमशः होते रहते हैं; ऐसे द्रव्य, सो ज्ञेय हैं। ज्ञेय द्रव्य की यथावत् प्रतीति करने से श्रद्धा में निर्विकल्पता और वीतरागता हो, वह मोक्ष का मार्ग है।

अहो! एक ही द्रव्य के एक परिणाम में दूसरे परिणाम का भी जहाँ अभाव है, वहाँ एक द्रव्य की अवस्था में दूसरा द्रव्य कुछ करे—यह तो बात ही कहाँ रहती है ? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में कुछ करता है अथवा एक द्रव्य के क्रमपरिणामों में परिवर्तन किया जा सकता है—ऐसा जो मानता है, उसे ज्ञेयतत्त्व की खबर नहीं है और ज्ञेयों को जाननेवाले अपने ज्ञानतत्त्व की भी खबर नहीं है।

कोई ऐसा माने कि 'मैंने अपनी बुद्धि से पैसा कमाया' तो ऐसा नहीं है; क्योंकि बुद्धि के जो परिणाम हुए, वह आत्मा के प्रवाहक्रम में आया हुआ परिणाम है और पैसा आया, वह पुद्गल के प्रवाहक्रम में आया हुआ पुद्गल का परिणाम है। दोनों द्रव्य अपने-अपने

प्रवाहक्रम में भिन्न-भिन्नरूप से वर्त रहे हैं। आत्मा अपने परिणाम -प्रवाह में स्थिर है, और जड़ पदार्थ जड़ के परिणामप्रवाह में स्थित हैं। दोनों पदार्थों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। जिसने पदार्थों का ऐसा स्वरूप जाना, उसके 'मैं पर के कुछ फेरफार करता हूँ या पर के कारण मुझमें कुछ फेरफार होता है'—ऐसी मिथ्याबुद्धि तो दूर हो गयी, इसलिए वह समस्त द्रव्यों का ज्ञाता रह गया। केवली भगवान वीतरागरूप से सबके ज्ञाता हैं; उसी प्रकार यह भी ज्ञाता ही है। अभी साधक है, इसलिए अस्थिरता के राग-द्वेष होते हैं, किन्तु वह भी ज्ञाता का ज्ञेय है। ज्ञान और राग की एकतापूर्वक राग-द्वेष नहीं होते किन्तु ज्ञान के ज्ञेयरूप से राग-द्वेष होते हैं। इसलिए अभिप्राय से (श्रद्धा से) तो वह साधक भी पूर्ण ज्ञाता ही है।

यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानने से स्वयं छहों द्रव्यों का ज्ञाता हो गया और छहों द्रव्य ज्ञान में ज्ञेय हुए। इस ओर स्वयं एक ज्ञाता और सामने छहों द्रव्य-ज्ञेय—ऐसा ज्ञातापना बतलाने के लिए 'स्वात्मानुभव मनन' में कहा है कि—आत्मा सप्तम द्रव्य हो जाता है।

अहो! ज्ञान ज्ञातास्वरूप से है, उस ज्ञान की प्रतीति निर्विकल्प-सम्यक्त्व का कारण है। प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप ऐसे द्रव्यस्वभाव को निश्चय करे तो ज्ञान जानने का ही कार्य करे; और ज्ञेय में 'ऐसा क्यों' ऐसा मिथ्याबुद्धि का विकल्प न आये। अस्थिरता का विकल्प आये, वह तो ज्ञान का ज्ञेय हो जाता है, क्योंकि ज्ञान में स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य प्रगट हो गया है, इसलिए वह राग को भी ज्ञान से भिन्न ज्ञेयरूप से जानता है, इसलिए उस विकल्प में 'ऐसा विकल्प क्यों?' ऐसा विकल्प का जोर नहीं आता; किन्तु 'यह राग भी ज्ञेयरूप से सत् है'—ऐसा ज्ञान जान लेता है, इसलिए

ज्ञान की ही अधिकता रहती है—दूसरे प्रकार से कहा जाये तो ज्ञान और राग का भेदज्ञान हो जाता है। और पश्चात् भी ऐसे ज्ञानस्वभाव के आधार से ज्ञेयों को जानने से उस ज्ञान का विकास होकर उसकी सूक्ष्मता और वीतरागता बढ़ती जाती है, और क्रमश: पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान होने से सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञेयरूप से एक साथ ज्ञान में डूब जाता है। —ऐसा यह अधिकार है।

यहाँ आत्मा में केवलज्ञान का सारा दल और सामने लोकालोक ज्ञेय का दल। बस! ज्ञेय-ज्ञायकस्वभाव रह गया। ज्ञेय-ज्ञायकपने में राग-द्वेष या फेरफार करना कहाँ रहा? अहो! ऐसे स्वभाव का स्वीकार तो कर! इसकी स्वीकृति में वीतरागी श्रद्धा है और उसी में वीतरागता तथा केवलज्ञान के बीज हैं।

❀

दो बातें हुई हैं:—(1) प्रथम तो, क्षेत्र के दृष्टान्त से द्रव्य के अनादि-अनन्त प्रवाह की एक समग्रवृत्ति बतलायी, और इस प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश, सो परिणाम हैं —ऐसा बतलाया। इस प्रकार द्रव्य को सत् सिद्ध किया। 'उसमें, अखण्ड अस्तित्व की अपेक्षा से एकत्व और परिणामों की अपेक्षा से अनेकत्व'—इस प्रकार सत् में एकत्व-अनेकत्व भी सिद्ध किया।

(2) उसके पश्चात् परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

इस प्रकार दो बातें सिद्ध कीं; अब उनका विस्तार करके उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं।

'जिस प्रकार वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप में उत्पन्न और

पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न—अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं, उसी प्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं।'

इसमें प्रदेशों की बात दृष्टान्तरूप और परिणामों की बात सिद्धान्तरूप है।

प्रश्न : यह कौन-सा विषय चल रहा है?

उत्तर : यह वस्तुस्वभाव की बात हो रही है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणाम— वह पदार्थों का स्वभाव है, और उस स्वभाव में सदैव स्थित द्रव्य सत् है—यह बात यहाँ सिद्ध करना है। उसमें प्रथम इतनी बात तो सिद्ध कर चुके हैं कि द्रव्य की वृत्ति अनादि-अनन्त अखण्डरूप से एक होने पर भी, उसके प्रवाहक्रम का अंश, सो परिणाम है। वे-वे परिणाम एक-दूसरे में नहीं वर्तते किन्तु उनका एक-दूसरे में अभाव है। उसमें से अब विस्तार करके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निकालते हैं। उसमें भी प्रथम क्षेत्र का दृष्टान्त देते हैं।

सम्पूर्ण द्रव्य के एक क्षेत्र को लें तो उसके प्रदेश उत्पत्ति-विनाशरहित हैं और उन प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक होने से, वे अपने-अपने स्वक्षेत्र में अपने सत् और पूर्व प्रदेशरूप से असत् हैं—अर्थात् वे प्रदेश अपने से उत्पादरूप हैं और पूर्व के प्रदेश की अपेक्षा से व्ययरूप हैं; इस प्रकार समस्त प्रदेश उत्पाद-व्ययरूप

हैं और सर्व प्रदेशों का विस्तार साथ में ले लेने से द्रव्य के प्रदेश ध्रौव्यरूप हैं। इस प्रकार समस्त प्रदेश एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। (यहाँ प्रदेशों के जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे हैं, वे क्षेत्र अपेक्षा से समझना।) इस उदाहरण के अनुसार समय-समय के परिणामों में भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है। अनादि-अनन्त एक प्रवाह की अपेक्षा से परिणाम, उत्पत्ति-विनाशरहित ध्रुव हैं और वे परिणाम अपने-अपने स्वकाल में उत्पादरूप हैं तथा पूर्व परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं। इस प्रकार समस्त परिणाम, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप हैं और ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप परिणाम, वह वस्तु का स्वभाव है।

यहाँ प्रथम समुच्चय क्षेत्र की और समुच्चय परिणामों की इकट्ठी बात लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध किये हैं। एक परिणाम पृथक् करके उसकी बात फिर करेंगे। यह बात अकेले आत्मा की नहीं किन्तु समस्त द्रव्यों के स्वभाव की है, किन्तु यहाँ आत्मा की मुख्यता से बात की जाती है।

जिस प्रकार आत्मा के असंख्य प्रदेशों में एक समय में क्षेत्र अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागू होता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रवाहक्रम में वर्तनेवाले समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न हैं, पूर्व-रूप से विनष्ट हैं और अखण्ड धारावाही प्रवाहरूप से वे उत्पन्न या विनष्ट नहीं हैं, इसलिए वे परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं।

प्रदेशों के उदाहरण में क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है और सिद्धान्त में परिणाम-अपेक्षा से (प्रवाह-अपेक्षा से, काल

-अपेक्षा से) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

देखो तो! क्रमबद्ध अपने अवसर में समस्त परिणामों के उत्पाद -व्यय-ध्रौव्य कहकर पूर्ण त्रैकालिक द्रव्य को ज्ञेयरूप से सामने रख दिया है। सर्वज्ञ की और ज्ञानस्वभाव की प्रतीति के बिना किसी प्रकार यह बात भीतर नहीं जम सकती। इसकी प्रतीति में सम्यग्दर्शन है और चौंसठपुटी पीपर घुंट रही हो, इस प्रकार इसके घोंटने में अकेली वीतरागता ही घुंटती है। अहो! अद्भुत बात रखी है।

द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न हैं, पूर्व-रूप से विनष्ट हैं और एक अखण्डप्रवाह की अपेक्षा से वे उत्पत्ति-विनाश रहित ध्रौव्य हैं।

यहाँ परिणामों का स्व-अवसर कहकर आचार्यदेव ने अद्भुत बात की है। जितने एक द्रव्य के परिणाम, उतने ही तीन काल के समय; और जितने तीन काल के समय, उतने ही एक द्रव्य के परिणाम। बस! इतना निश्चित करे तो अपने ज्ञायकपने की प्रतीति हो जाए। द्रव्य के प्रत्येक परिणाम का अपना-अपना अवसर भिन्न है। तीन काल के परिणाम एकसाथ ज्ञेय हैं और यहाँ आत्मा उनका ज्ञाता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायकपने में बीच में राग नहीं रहा, अकेली वीतरागता ही आयी। प्रथम ऐसी श्रद्धा करने से वीतरागी श्रद्धा होती और पश्चात् ज्ञानस्वभाव में स्थिरता होने से वीतरागी चारित्र होता है।

अहो! द्रव्य के परिणामों का स्व-अवसर कहो अथवा क्रमबद्ध -परिणाम कहो, उसकी प्रतीति करने से परिणामी-ऐसे त्रिकाली

द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। परिणामों के स्व-अवसर की यह बात स्वीकार करने से तो—निमित्त आये तो परिणाम होता है, या निमित्त के कारण यहाँ परिणाम में फेरफार होता है, कर्म के उदय से विकार होता है, या व्यवहार करते-करते परमार्थ प्रगट होता है, अथवा तो पर्याय के आधार से पर्याय होती है—ऐसी कोई बात बनी ही नहीं रहती। समस्त परिणाम अपने-अपने अवसर में द्रव्य में से प्रगट होते हैं। जहाँ द्रव्य का प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में 'सत्' है, वहाँ निमित्त के सन्मुख देखना ही कहाँ रहा?—और 'मैं पर में फेरफार करूँ या पर से मुझमें फेरफार हो'—यह बात भी कहाँ रही?—मात्र ज्ञाता और ज्ञेयपना ही रहता है, यही मोक्षमार्ग है, यही सम्यक् पुरुषार्थ है।

जो तीन काल के परिणाम हैं, वे द्रव्य के प्रवाहरूपी साँकल की कड़ियाँ हैं। जिस प्रकार साँकल की कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती; जैसी हैं, वैसी ही रहती हैं; उसी प्रकार द्रव्य के अनादि -अनन्त परिणाम अपने अवसर से आगे-पीछे नहीं होते, प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में सत् है। इसमें तीन काल के परिणामों की एक अखण्ड साँकल लेकर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात है। द्रव्य अपने परिणामस्वभाव में स्थित है। इस समय परिणाम का स्वभाव क्या है, वह बात चल रही है। प्रथम परिणामों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव सिद्ध करते हैं और पश्चात् द्रव्य उस परिणामस्वभाव में स्थित होने से वह द्रव्य भी उत्पाद-व्यय -ध्रौव्ययुक्त सत् है—ऐसा अन्त में सिद्ध करेंगे। ज्ञाता, वस्तु के ऐसे स्वभाव को जाने और ज्ञेयों में फेरफार करना न माने, वह सम्यक्त्व है और पदार्थों के स्वभाव का ज्ञाता रहे, उसमें वीतरागता है।

इस प्रवचनसार में पहले तो ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन में आत्मा का ज्ञानस्वभाव निश्चित किया है और पश्चात् दूसरे अधिकार में ज्ञेयतत्त्वों का वर्णन किया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान ही है और जीव-अजीव में अपने-अपने अवसर में होनेवाले तीन काल के परिणाम ज्ञेय हैं—ऐसी प्रतीति करने से कहीं फेरफार या आगे-पीछे करने की बुद्धि नहीं रही; इसलिए ज्ञान स्व में स्थिर हुआ। यही वीतरागता और केवलज्ञान का कारण है।

पदार्थों का जैसा सत्स्वभाव हो, वैसा माने तो सत्मान्यता कहलाये, किन्तु पदार्थों के सत्स्वभाव से अन्य प्रकार माने तो वह मान्यता मिथ्या है। यह 'सत्' की श्रद्धा कराते हैं। 'सत्' द्रव्य का लक्षण है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। द्रव्य के ऐसे सत्स्वभाव की प्रतीति करना, सो सम्यग्दर्शन है, यही सच्चा 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' है। इस समय बात तो परिणामों की चल रही है, किन्तु परिणाम के निर्णय में परिणामी द्रव्य का निर्णय भी आ जाता है। परिणाम तो क्षणिक हैं, किन्तु वह परिणाम किसके! कहते हैं कि-त्रिकाली द्रव्य के। परिणाम अद्धर से नहीं होते किन्तु परिणामी के परिणाम हैं; इसलिए परिणाम का निर्णय करने से परिणामी द्रव्य का ही निर्णय होता है और अकेले परिणाम के ऊपर से रुचि हटकर त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की ओर रुचि और ज्ञान झुकता है—यही सम्यग्दर्शन और वीतरागता का मूल है।

यह 99 वीं गाथा अत्युत्तम है; इसमें वस्तुस्थिति के स्वरूप का अलौकिक रीति से वर्णन किया है। समस्त द्रव्य 'सत्' है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित परिणाम उसका स्वभाव है और ऐसे स्वभाव में सदैव प्रवर्तमान होने से द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है;

—ऐसा इस गाथा में सिद्ध करना है।

(1) टीका में, प्रथम तो द्रव्य में समग्रपने द्वारा अनादि-अनन्त प्रवाह की एकता, और प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश, सो परिणाम—ऐसा बतलाया।

(2) फिर प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान परिणामों का परस्पर व्यतिरेक सिद्ध किया।

(3) पश्चात् समुच्चयरूप से सम्पूर्ण द्रव्य के त्रिकाली परिणामों को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया। (उसके दृष्टान्त में, द्रव्य के समस्त प्रदेशों को क्षेत्र-अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सिद्ध किया।)

(4) तत्पश्चात् एक ही परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकपना बतलाया। (उसके दृष्टान्त में प्रत्येक प्रदेश में क्षेत्र -अपेक्षा से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलाये।)

(5) इस प्रकार परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने के पश्चात् अन्त में—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणाम के प्रवाह में निरन्तर वर्त रहा है, इसलिए द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित होने से सत् है—इस प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य लेकर उत्पाद-व्यय -ध्रौव्य सिद्ध किये हैं।

ऊपर जो पाँच बोल कहे हैं, उनमें से इस समय यह तीसरे बोल का विवेचन हो रहा है। अपने-अपने अवसर में त्रैकालिक समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एक ही साथ बात करके यहाँ अकेला ज्ञायकभाव ही बतलाया है। यहाँ सम्पूर्ण ज्ञायकभाव और सामने सम्पूर्ण ज्ञेय एकसाथ ले लिया है।

यहाँ परिणामों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाने के लिए प्रदेशों का उदाहरण लिया है। कोई ऐसा कहे कि—दूसरा कोई सरल उदाहरण न देकर आचार्यदेव ने प्रदेशों का ऐसा सूक्ष्म उदाहरण क्यों दिया ?—तो कहते हैं कि—भाई ! तू शान्त हो ! आचार्यदेव ने प्रदेशों का उदाहरण योग्य ही दिया है। क्योंकि द्रव्य का सारा क्षेत्र एकसाथ अक्रम से फैला पड़ा है और परिणामों की व्यक्तता तो क्रमशः होती है; इसलिए प्रदेशों का उदाहरण शीघ्र ही समझ में आ सकता है, और परिणामों की बात उससे सूक्ष्म है। यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म एवं गम्भीर बात समझाना है; इसलिए उदाहरण भी प्रदेशों का सूक्ष्म ही लेना पड़ा है। यदि बाह्य-स्थूल उदाहरण दें तो सिद्धान्त की जो सूक्ष्मता और गम्भीरता है, वह ख्याल में नहीं आयेगी; इसलिए ऐसे सूक्ष्म उदाहरण की ही यहाँ आवश्यकता है।

आत्मा ज्ञानस्वभाव है। उस ज्ञान का स्वभाव 'जानना' है, अर्थात् ज्ञान, जानने का ही कार्य करता है। आत्मा में और पर में क्रमशः जो अवस्था हो, वह ज्ञेय है; उसे जैसी हो, वैसा मात्र जानना ज्ञान का स्वभाव है, किन्तु उसमें कुछ भी फेरफार करे, ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। ज्ञान करे क्या ? ज्ञान तो जानता है। जानने के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान का कार्य नहीं है। रागदि परिणाम हुए, उन्हें भी जानना ज्ञान का कार्य है, किन्तु उस राग को अपना त्रिकाली-स्वभाव माने या हितकर माने, ऐसा ज्ञान का कार्य नहीं है और उस राग-परिणाम को बदलकर आगे-पीछे करे, ऐसा भी ज्ञान का कार्य नहीं है। बस ! स्व या पर, विकारी या अविकारी, समस्त ज्ञेयों को जानना ही ज्ञान का कार्य है; मैं रागादि परिणामों

जितना ही हूँ—ऐसा ज्ञान नहीं मानता।—ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति ही वीतरागता का मूल है।

इस जगत में अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और असंख्यात कालाणु—ऐसे छह प्रकार के पदार्थ हैं। उनमें से प्रत्येक आत्मा का ज्ञानगुण छहों पदार्थों की क्रमशः होनेवाली समस्त अवस्थाओं को तथा द्रव्य-गुण को जाननेवाला है; ऐसा प्रत्येक आत्मा का ज्ञानस्वभाव है। ऐसे ज्ञातास्वभाव को जो जानता है, वह जीव, रागपरिणाम को जानता अवश्य है, किन्तु उस राग को अपना मूलस्वरूप नहीं मानता—राग को धर्म नहीं मानता, राग को उपादेय नहीं मानता और रागपरिणाम को आगे-पीछे करनेवाला भी स्वभाव नहीं मानता। उसके अवसर में वह रागपरिणाम भी सत् है, और उसे जाननेवाला ज्ञान भी सत् है; द्रव्य के त्रिकाली प्रवाहक्रम में वह रागपरिणाम भी सत्‌रूप से आ जाता है, इसलिए वह भी ज्ञान का ज्ञेय है। राग था, इसलिए राग का ज्ञान हुआ—ऐसा नहीं है, किन्तु ज्ञान का ही स्वभाव जानने का है। पूर्ण स्वज्ञेय को जाननेवाला ज्ञान, उस राग को भी स्वज्ञेय के अंशरूप से जानता है; त्रिकाली अंशी के ज्ञानसहित अंश का भी ज्ञान करता है। यदि राग को स्वज्ञेय के अंशरूप से सर्वथा न जाने तो उस ज्ञान में सम्पूर्ण स्वज्ञेय पूर्ण नहीं होता, इसलिए वह ज्ञान सच्चा नहीं होता; और यदि उस रागरूप अंश को ही पूर्ण स्वज्ञेय मान ले और त्रिकाली द्रव्य-गुण को स्वज्ञेय न बनाये तो वह ज्ञान भी मिथ्या है। द्रव्य-गुण और समस्त पर्यायें—यह तीनों मिलकर स्वज्ञेय पूरा होता है; उसमें अंशी-त्रिकाली द्रव्य-गुण की रुचि सहित अंश को और परज्ञेय को जानने का कार्य सम्यग्ज्ञान करता

है। यथार्थ ज्ञान में ज्ञेयों का स्वभाव कैसा ज्ञात होता है, उसका यह वर्णन है।

समस्त पदार्थों का स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है; प्रत्येक पदार्थ में प्रति समय परिणाम होते हैं, वे परिणाम क्रमानुसार अनादि-अनन्त होते रहते हैं, इसलिए स्व-अवसर में होनेवाले परिणामों का प्रवाह अनादि-अनन्त है। उस प्रवाहक्रम का छोटे से छोटा प्रत्येक अंश भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप स्वभाववाला है। अनादि-अनन्त काल के प्रत्येक समय में उस-उस समय का परिणाम स्वयं सत् है। ऐसे सत् परिणामों को ज्ञान जानता है, किन्तु उनमें कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता। जैसे-अग्नि या बर्फ आदि पदार्थों को आँख देखती है, किन्तु उनमें कुछ भी फेरफार नहीं करती; उसी प्रकार ज्ञान की पर्याय भी ज्ञेयों को सत्‌रूप से जैसे हैं, वैसा जानती ही है; उनमें कुछ फेरफार नहीं करती। स्व-अवसर में जब जो परिणाम है, उस समय वही परिणाम होता है-अन्य परिणाम नहीं होते—ऐसा जहाँ ज्ञान में निश्चित किया, वहाँ किसी भी ज्ञेय के उल्टा-सीधा करने की मिथ्याबुद्धिपूर्वक के राग-द्वेष नहीं होते।

अहा! देखो तो! क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में कितनी गम्भीरता है! द्रव्य की पर्याय पर से बदलती है—यह बात तो है ही नहीं, किन्तु द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय को उल्टा-सीधा करना चाहे तो भी नहीं हो सकती। जिस प्रकार त्रिकाली द्रव्य पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता; उसी प्रकार उसका प्रत्येक समय का अंश—परिणाम भी बदलकर अन्यरूप नहीं होता। 'मैं जीव नहीं रहना चाहता किन्तु अजीव हो जाना है'—इस प्रकार जीव को बदलकर कोई अजीव करना चाहे तो क्या वह बदल सकता है? नहीं बदल

सकता। जीव पलटकर कभी भी अजीवरूप नहीं होता। जिस प्रकार त्रिकाली सत् नहीं बदलता, उसी प्रकार उसका वर्तमान सत् भी नहीं बदलता। जिस प्रकार त्रिकाली द्रव्य नहीं बदलता, उसी प्रकार उसकी प्रत्येक समय की अनादि-अनन्त अवस्थायें भी जिस समय जो हैं, उनमें फेरफार या आग-पीछा नहीं हो सकता। त्रिकाली प्रवाह के वर्तमान अंश अपने-अपने काल में सत् हैं। बस, पर में या स्व में कहीं भी फेरफार करने की बुद्धि न रही; इसलिए ज्ञान ज्ञाता ही रह गया। पर्यायबुद्धि में रुकना न रहा। इस प्रकार ज्ञान जानने का कार्य करता है—ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीत करना, सो सम्यग्दर्शन है। अभी केवलज्ञान होने से पूर्व वह जीव, केवलीभगवान का लघुनन्दन हो गया। श्रद्धा-अपेक्षा से तो वह साधक भी सर्व का ज्ञायक हो गया है।

समस्त पदार्थों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव को निश्चित् करने से स्व में या पर में फेरफार करने की बुद्धि नहीं रही, किन्तु ज्ञान में जानने का ही कार्य रहा; इसलिए ज्ञान में से 'ऐसा क्यों'— ऐसी हाय-हाय (-खलबलाहट) निकल गयी और ज्ञान, ज्ञाता होकर अपने में स्थिर हुआ—इसी में ज्ञान का परमपुरुषार्थ है; इसी में मोक्षमार्ग का और केवलज्ञान का पुरुषार्थ आ जाता है। पर में कर्तृत्वबुद्धिवाले को ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं बैठती और न उसे ज्ञान के स्वभाव का—ज्ञायकपने का पुरुषार्थ भी ज्ञात होता है।

अहो! समस्त द्रव्य अपने-अपने अवसर में होनेवाले परिणामों में वर्त रहे हैं; उसमे तू कहाँ परिवर्तन करेगा? भाई! तेरा स्वभाव तो देखने का है। तू देखनेवाले को दृष्टा ही रख; दृष्टा को हाय-हाय करनेवाला न बना। दृष्टास्वभाव की प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। मैं

पर में फेरफार करता हूँ और पर मुझमें फेरफार करता है—ऐसा मिथ्यादृष्टि का भाव है, उसे ज्ञान और ज्ञेय के स्वभाव की प्रतीति नहीं है। जगत के जड़ या चेतन समस्त द्रव्य अपने प्रवाह में वर्तते हैं, उनमें जो-जो अंश वर्तमान में वर्त रहा है, उसे कोई आगे-पीछे नहीं कर सकता। मैं ध्यान रखकर शरीर को बराबर रखूँ—ऐसा कोई माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। शरीर का प्रत्येक परमाणु उसके अपने प्रवाहक्रम में वर्त रहा है, उसके क्रम को कोई बदल नहीं सकता। कहीं भी फेरफार करने का आत्मा के किसी भी गुण का कार्य नहीं है, किन्तु स्व को जानते हुए पर को जाने —ऐसा उसके ज्ञान-गुण का स्व-परप्रकाशक कार्य है। इसकी प्रतीति ही मुक्ति का कारण है।

प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल परिणमित होता रहता है; उसके त्रिकाल के प्रवाह में स्थित समस्त परिणाम, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप हैं। अपने स्वकाल में वे सब परिणाम अपनी अपेक्षा से उत्पादरूप हैं; पूर्व के परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप हैं और परस्पर सम्बन्धवाले अखण्डप्रवाह की अपेक्षा से वे ध्रौव्य हैं। द्रव्य के समस्त परिणाम अपने-अपने काल में सत् हैं। वे परिणाम स्वयं अपनी अपेक्षा से असत् (व्ययरूप) नहीं हैं, किन्तु अपने पहले के-पूर्वपरिणाम की अपेक्षा से वे असत् (व्ययरूप) हैं और प्रथम पश्चात् के भेद किये बिना अखण्डप्रवाह को देखो तो समस्त परिणाम ध्रौव्य हैं। जब देखो तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणाम में वर्त रहा है। द्रव्य त्रिकाल होने पर भी जब देखो तब वह वर्तमान परिणाम में वर्त रहा है—कहीं भूत में या भविष्य में नहीं वर्तता। द्रव्य के तीनों काल के जो वर्तमान परिणाम हैं, वे अपने से पहले के परिणाम के अभावस्वरूप

हैं; और स्वपरिणामरूप से उत्पादरूप हैं, तथा वे ही अखण्डप्रवाहरूप से ध्रौव्यरूप हैं।

देखो, इसमें यह बात आ गयी कि पूर्व के परिणाम-अभावस्वरूप वर्तमान परिणाम हैं, इसलिए पूर्व के संस्कार वर्तमान पर्याय में नहीं आते, और न पूर्व का विकार वर्तमान में आता है; पहले विकार किया था, इसलिए इस समय विकार हो रहा है—ऐसा नहीं है। वर्तमान परिणाम स्वतन्त्रतया द्रव्य के आश्रय से होते हैं। यह निर्णय होने से ज्ञान और श्रद्धा द्रव्यस्वभावोन्मुख हो जाते हैं। जिस प्रकार त्रिकाली जड़ द्रव्य बदलकर चेतन या चेतन द्रव्य बदलकर जड़ नहीं होता; उसी प्रकार उसका वर्तमान प्रत्येक अंश भी बदलकर दूसरे अंशरूप नहीं होता। जिस-जिस समय का जो अंश है, उस-उस रूप ही सत् रहता है। बस, भगवान सर्वज्ञरूप से ज्ञाता है, उसी प्रकार ऐसी प्रतीति करनेवाला स्वयं भी प्रतीति में ज्ञाता ही रहा।

पर के कारण पर में कुछ होता है—यह बात तो दूर रही, परन्तु द्रव्य स्वयं अपने अंश को आगे-पीछे करे, ऐसी उस द्रव्य की शक्ति नहीं है; पहले का अंश पीछे नहीं होता, पीछे का अंश पहले नहीं होता।—ऐसा निर्णय करनेवाले को अंशबुद्धि दूर होकर अंशी की दृष्टि होने से सम्यक्त्वपरिणाम का उत्पाद और मिथ्यात्वपरिणाम का व्यय हो जाता है।

प्रभु ! तू आत्मा वस्तु है, तेरा ज्ञानगुण तेरे आधार से टिका है, वह ज्ञाता स्वभाववाला है और तेरे तीन काल के परिणाम अपने अवसर के अनुसार, द्रव्य में से होते रहते हैं। तेरे अपने वर्तमान में प्रवर्तमान अंश को कम-अधिक या आगे-पीछे कर सके—ऐसा

तेरा स्वभाव नहीं है; और न पर के परिणाम में भी फेरफार हो सकता है। स्व-पर समस्त ज्ञेयों को यथावत् जानने का ही तेरा स्वभाव है। ऐसे ज्ञातास्वभाव की प्रतीति में ही आत्मा का सम्यक्त्व है।

प्रश्न : मिथ्यात्वपरिणाम को बदलकर सम्यक्त्व करूँ—ऐसा तो लगता है न?

उत्तर : देखो, ज्ञातास्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें मिथ्यात्व दूर हो ही गया है। सम्यक्त्वपरिणाम का उत्पाद हुआ, उस समय मिथ्यात्वपरिणाम वर्तमान नहीं होते; इसलिए उन्हें बदलना भी कहाँ रहा? मिथ्यात्व को हटाकर सम्यक्त्व करूँ—ऐसे लक्ष्य से सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु द्रव्यसन्मुख दृष्टि होने से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्वपरिणाम का अभाव हो ही गया है; इसलिए उस परिणाम को भी बदलना नहीं रहता। मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्वपर्याय प्रगट हुई, उसे भी आत्मा जानता है, किन्तु परिणाम के किसी भी क्रम को वह आगे-पीछे नहीं करता।

अहो! जिस-जिस पदार्थ का जो वर्तमान अंश है, वह कभी नहीं बदलता।— इसमें अकेला वीतरागीविज्ञान ही आता है। पर्याय को बदलने की बुद्धि नहीं है और 'ऐसा क्यों'—ऐसा विषमभाव नहीं है, इसलिए श्रद्धा और चारित्र दोनों का मेल बैठ गया। इस ९९ वीं गाथा में दो नौ इकट्ठे होते हैं और उनमें से सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र दोनों इकट्ठे हो जायें, ऐसा उच्च भाव निकलता है। जिस प्रकार नौ का अंक अफर (जो फिर न सके) माना जाता है,

उसी प्रकार यह भाव भी अफर है।

त्रिकाली द्रव्य के प्रत्येक समय के परिणाम सत् हैं—ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है; द्रव्य सत् है और पर्याय भी सत् है; यह 'सत्' जिसे नहीं बैठा और पर्याय में फेरफार करना मानता है, उसे वस्तु के स्वभाव की, सर्वज्ञदेव की, गुरु की या शास्त्र की बात नहीं जमी है, और वास्तव में उसने उन किसी को नहीं माना है।

त्रिकाली वस्तु का वर्तमान कब नहीं होता ?—सदैव होता है। वस्तु का कोई भी वर्तमान अंश ख्याल में लो, वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। वस्तु को जब देखो, तब वह वर्तमान में रही है। इस वर्तमान को यहाँ स्वयंसिद्धि सत् सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार त्रिकाली सत् पलटकर चेतन में से जड़ नहीं हो जाता, उसी प्रकार उसका प्रत्येक वर्तमान अंश है, वह सत् है, वह अंश भी पलटकर आगे-पीछे नहीं होता। जिसने ऐसे वस्तुस्वभाव को जाना, उसको अपने अकेले ज्ञायकपने की प्रतीति हुई, वही धर्म हुआ। और उसने देव-गुरु-शास्त्र को भी यथार्थरूप से माना कहा जाएगा।

तीनों काल के समय में तीनों काल के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; कोई भी एक समय का जो परिणाम है, वह पहले नहीं था और फिर उत्पन्न हुआ, इसलिए पूर्वपरिणाम के पश्चात्‌रूप से वह उत्पादरूप है, और उस परिणाम के समय पूर्व के परिणाम का व्यय है—पूर्वपरिणाम का व्यय होकर वह परिणाम उत्पन्न हुआ है, इसलिए पूर्व-परिणाम की अपेक्षा वही परिणाम व्ययरूप है, और तीनों काल के परिणाम के अखण्डप्रवाह की अपेक्षा से वह परिणाम उत्पन्न भी नहीं हुआ है और विनाशरूप भी नहीं है—है वैसा है

अर्थात् ध्रौव्य है। इस प्रकार अनादि-अनन्त प्रवाह में जब देखो, तब प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभावरूप है।

किसी भी वस्तु की पर्याय में फेरफार करने की उमंग, सो पर्यायबुद्धि मिथ्यात्व है; उसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं है और ज्ञेयों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव की भी खबर नहीं है। अरे भगवान! वस्तु 'सत्' है न? तो तू उस सत् के ज्ञान के अतिरिक्त दूसरा उसमें क्या करेगा? तू सत् में फेरफार करना मानेगा तो सत् तो नहीं बदलेगा, किन्तु तेरा ज्ञान असत् होगा। जिस प्रकार वस्तु सत् है, उसी प्रकार उसे भगवान ने केवलज्ञान में जाना है, वही वाणी द्वारा कहा गया है—नवीन नहीं कहा गया। भगवान ने तो जैसा सत् था, वैसा मात्र ज्ञान किया है; वाणी जड़ है, उसे भी भगवान ने नहीं निकाला। भगवान का आत्मा अपने केवल ज्ञानपरिणाम में वर्त रहा है और वाणी की पर्याय, परमाणुओं के परिणमन प्रवाह में वर्त रही है तथा समस्त पदार्थ अपने सत् में वर्त रहे हैं। ज्ञायकमूर्ति आत्मा तो जानने का कार्य करता है कि—'सत् ऐसा है।' बस, इसी का नाम सम्यग्दर्शन और वीतरागता का मार्ग है।

भगवान कैसे हैं?—'सर्वज्ञ'—सर्व के ज्ञाता; किसी में राग-द्वेष या फेरफार करनेवाले नहीं हैं। भगवान की भाँति मेरे आत्मा का स्वभाव भी जानने का है—इस प्रकार तू भी अपने ज्ञातास्वभाव की श्रद्धा कर और पदार्थों में फेरफार करने की बुद्धि छोड़! जिसने अपने ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा की, वह अस्थिरता के राग-द्वेष का भी ज्ञाता ही रहा। जिसने ऐसे ज्ञानस्वभाव को माना, उसी ने अरहन्तदेव को माना, उसी ने आत्मा को माना, उसी ने गुरु को

तथा शास्त्र को माना, उसी ने नवपदार्थों को माना, उसी ने छह द्रव्यों को तथा उनके वर्तमान अंश को माना; उसी का नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

'जानना' आत्मा का स्वभाव है। बस, जानना ही आत्मा का पुरुषार्थ है, वही आत्मा का धर्म है, उसी में मोक्षमार्ग और वीतरागता है। अनन्त सिद्धभगवन्त भी प्रतिसमय पूर्ण जानने का ही कार्य कर रहे हैं।

ज्ञान में स्व-पर दोनों ज्ञेय हैं। 'ज्ञान ज्ञाता है'—ऐसा जाना, वहाँ ज्ञान भी स्वज्ञेय हुआ। ज्ञान को रागादि का कर्ता माने या बदलनेवाला माने तो उसने ज्ञान के स्वभाव को नहीं जाना है—स्वयं अपने को स्वज्ञेय नहीं बनाया, इसलिए उसका ज्ञान मिथ्या है। वस्तु के समस्त परिणाम अपने-अपने समय में सत् हैं—ऐसा कहते ही अपना स्वभाव ज्ञायक ही है—ऐसा उसमें आ जाता है।

❀

इस गाथा में क्षेत्र का उदाहरण देकर पहले द्रव्य का त्रिकाली सत्पना बतलाया, उसके त्रिकाली प्रवाहक्रम के अंश बतलाये, और उन अंशों में (परिणामों में) अनेकतारूप प्रवाहक्रम का कारण उनका परस्पर व्यतिरेक है—ऐसा सिद्ध किया। तपश्चात् सम्पूर्ण द्रव्य के समस्त परिणामों को स्व-अवसर में वर्तनेवाला, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप बतलाया। इतनी बात पूर्ण हुई।

अब, प्रत्येक समय के वर्तमान परिणाम को लेकर उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना बतलाते हैं। पहले समग्र परिणामों की बात थी और अब यहाँ एक ही परिणाम की बात है; और फिर अन्त

में परिणामी द्रव्य की ही बात लेकर द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बतलायेंगे।

पुनश्च, 'जिस प्रकार वस्तु का जो छोटे से छोटा (अन्तिम) अंश पूर्व प्रदेश के विनाशरूप है, वही (अंश) तत्पश्चात् प्रदेश के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुभयस्वरूप है (अर्थात् दो में से एक स्वरूप भी नहीं है।) उसी प्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्णपरिणाम के विनाशस्वरूप है, वही तत्पश्चात् के परिणाम के उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।'

असंख्यप्रदेशी आत्मा का कोई भी एक प्रदेश लो तो वह प्रदेश, क्षेत्र अपेक्षा से पूर्व के प्रदेश के व्ययरूप है, स्वयं अपने क्षेत्र के उत्पादरूप है और अखण्ड क्षेत्र अपेक्षा से वही ध्रौव्य है।—यह दृष्टान्त है। उसी प्रकार अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम में वर्तमान प्रवर्तित कोई भी एक परिणाम, पूर्व के परिणाम के व्ययरूप है, तत्पश्चात् के परिणाम की अपेक्षा से उत्पादस्वरूप है, और पहले-पीछे का भेद किये बिना सम्पूर्ण प्रवाहक्रम के अंशरूप से देखें तो वह परिणाम ध्रौव्यरूप है। इस प्रकार प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है।

समस्त परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात ली, तब 'अपने-अपने अवसर में'—ऐसा कहकर उस प्रत्येक का स्वतन्त्र स्वकाल बतलाया था। और यहाँ एक परिणाम की विवक्षा लेकर बात करने से उन शब्दों का उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान

एक ही परिणाम लिया, उसी में उसका वर्तमान स्वकाल आ गया।

वर्तमान वर्तनेवाला परिणाम, पूर्वपरिणाम के अभावरूप ही है; इसलिए पूर्व के विकार का अभाव करूँ—यह बात नहीं रहती; और वर्तमान में सत्‌रूप है, इसमें भी फेरफार करना नहीं रहता। ऐसा समझने पर, मात्र वर्तमान परिणाम की दृष्टि से परिणाम और परिणामी की एकता होने पर सम्यक्त्व का उत्पाद होता है, उसमें पूर्व के मिथ्यात्व का व्यय है ही, मिथ्यात्व को दूर नहीं करना पड़ता। किसी भी परिणाम को मैं नहीं बदल सकता, मात्र जानता हूँ—ऐसा मेरा स्वभाव है—इस प्रकार ज्ञानस्वभाव की प्रतीति में सम्यक्त्वपरिणाम का उत्पाद और उसी में मिथ्यात्व का व्यय है ही। इसलिए मिथ्यात्व को दूर करूँ और सम्यक्त्व प्रगट करूँ—यह बात ही नहीं रहती। जहाँ ऐसी बुद्धि, वहाँ उस समय का सत्‌परिणाम स्वयं ही सम्यक्त्व के उत्पादरूप और मिथ्यात्व के व्ययरूप हैं, तथा एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित परिणामों के अखण्डप्रवाहरूप से वह परिणाम ध्रौव्य है। इस प्रकार प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है।

जिस प्रकार वस्तु सत् है, उसी प्रकार उसका वर्तमान भी सत् है। वस्तु के त्रिकाली प्रवाह में प्रत्येक समय का अंश सत् है; वर्तमान समय का परिणाम पूर्व के कारण नहीं है, किन्तु पूर्व के अभाव से ही अपनेरूप से सत् है। वह वर्तमान अंश पर से नहीं किन्तु अपने से है। प्रत्येक समय का वर्तमान अंश निरपेक्षरूप से अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् है।

सर्वज्ञ के अतिरिक्त वस्तुस्वरूप का ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं हो

सकता। भाई! तू क्या करेगा? जगत के तत्त्व सत् हैं, उनकी पहली पर्याय के कारण भी दूसरी पर्याय नहीं होती, तब फिर तू उसमें क्या करेगा? तू तो मात्र ज्ञाता रह! इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मानेगा तो, वस्तु में तो कुछ भी फेरफार नहीं होगा किन्तु तेरा ज्ञान मिथ्या होगा।

वस्तु का वर्तमान अंश है, वह सत् है—इस प्रकार यहाँ तो वर्तमान प्रत्येक समय के परिणाम को सत् सिद्ध करना है। द्रव्य के आधार से अंश है—यह बात इस समय नहीं लेना है। यदि द्रव्य के कारण परिणाम का सत्पना हो, तब तो सभी परिणाम एक-समान ही हों; इसलिए द्रव्य के कारण परिणाम का सत् है—ऐसा न लेकर, प्रत्येक समय का परिणाम स्वयं सत् है, द्रव्य ही उस वर्तमान परिणामरूप से वर्तता हुआ सत् है—ऐसा लिया है। प्रवाह का वर्तमान अंश उस अंश के कारण ही है। अहो! प्रत्येक समय का अकारणीय सत् सिद्ध किया है। समय-समय का सत् अहेतुक है। समस्त पदार्थों के तीनों काल के वर्तमान का प्रत्येक अंश निरपेक्ष सत् है; ज्ञान उसे जैसे का तैसा-यथावत्-जानता है, किन्तु बदलता नहीं है। ज्ञान ने जाना, इसलिए वह अंश वैसा है—ऐसी बात नहीं है। वह स्वयं सत् है।

वर्तमान परिणाम, पूर्व परिणाम के व्ययरूप है; इसलिए वर्तमान परिणाम को पूर्व परिणाम की भी अपेक्षा नहीं रही, तब फिर परपदार्थ के कारण उसमें कुछ हो, यह बात कहाँ रही। केवली भगवान को पहले समय केवलज्ञान हुआ, इसलिए दूसरे समय वह केवलज्ञान रहा—ऐसा नहीं है, किन्तु दूसरे समय के उस वर्तमान परिणाम का केवलज्ञान उस समय के अंश से ही सत् है। पहले समय के सत् के कारण दूसरे समय का सत् नहीं है। इसी

प्रकार सिद्ध भगवान को पहले समय की सिद्धपर्याय थी, इसलिए दूसरे समय सिद्धपर्याय हुई —ऐसा नहीं है। सिद्ध में और समस्त द्रव्यों में प्रत्येक समय का अंश सत् है।

यहाँ एक अंश के परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में 'अपने अवसर में'—ऐसी भाषा का उपयोग नहीं किया; क्योंकि वर्तमान प्रवर्तित एक परिणाम की बात है, और वर्तमान में जो परिणाम वर्तता है, वही उसका स्वकाल है। तीनों काल के प्रत्येक परिणाम का जो वर्तमान है, वह वर्तमान ही उसका स्वकाल है। अपने वर्तमान को छोड़कर वह आगे-पीछे नहीं होता। इस प्रकार वर्तमान प्रत्येक परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव है।

❀

इस गाथा में अभी तक चार बोल आये :—

(1) द्रव्य का अखण्ड प्रवाह एक है और उसके क्रमशः होनेवाले अंश, सो परिणाम हैं।

(2) उन परिणामों में अनेकता है, क्योंकि परस्पर व्यतिरेक है।

(3) तीनों काल के परिणामों का पूरा दल लेकर समस्त परिणामों में सामान्यरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना कहा।

(4) सम्पूर्ण प्रवाह का एक अंश लेकर प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहे।

—ऐसे चार प्रकार हुए। इस प्रकार परिणाम का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित् करके, अब अन्त में परिणामी द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते हैं।

'इस प्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणामपद्धति में (परिणामों की परम्परा में) प्रवर्तमान द्रव्यस्वभाव का अतिक्रमण न करने से सत्त्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदना।'

द्रव्य के समस्त परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप हैं और उन परिणामों के क्रम में प्रवर्तमान द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त ही है। यदि परिणाम की भाँति द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त न हो तो वह परिणामों की परम्परा में वर्त ही नहीं सकता। जो द्रव्य है, सो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप समस्त परिणामों की परम्परा में वर्तता है, इससे उसके भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं। परिणामों की पद्धति कही है, अर्थात् जिस प्रकार साँकल की कड़ियाँ आगे-पीछे नहीं होती; उसी प्रकार परिणामों का प्रवाहक्रम नहीं बदलता; जिस समय द्रव्य का जो परिणाम प्रवाहक्रम में हो, उस समय उस द्रव्य का वही परिणाम होता है—दूसरा परिणाम नहीं होता। देखो, यह वस्तु के सत् स्वभाव का वर्णन है। वस्तु का सत्स्वभाव है, सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम है और उसे भगवान द्रव्य का लक्षण कहते हैं—'सत् द्रव्य लक्षणं।' तेरा स्वभाव जानने का है। जैसा सत् है, वैसा तू जान। सत् को उलटा-सीधा करने की बुद्धि करेगा तो तेरे ज्ञान में मिथ्यात्व होगा। वस्तुएँ सत् हैं और मैं उनका ज्ञाता हूँ—ऐसी श्रद्धा होने के पश्चात् अस्थिरता का विकल्प उठता है, किन्तु उसमें मिथ्यात्व का जोर नहीं आता। इसलिए ऐसी ज्ञान और ज्ञेय की श्रद्धा के बल से उस अस्थिरता का विकल्प भी टूटकर वीतरागता और केवलज्ञान होगा ही!—ऐसी यह अलौकिक बात है।

यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म, परम सत्य एवं गम्भीर है।

सर्वज्ञदेव ने केवलज्ञान में वस्तु का स्वभाव जैसा है, वैसा पूर्ण जाना और वैसा ही वाणी में आ गया। जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा जानकर माने तो ज्ञान और श्रद्धा सम्यक् हो; वस्तु के स्वभाव को यथावत् न जाने तथा अन्य रीति से माने तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक्श्रद्धा नहीं होते, और उनके बिना व्रत-तपादि सच्चे नहीं होते। वस्तु के स्वभाव की स्थिति क्या है और उसके नियम कैसे सत्य हैं, उसका यह वर्णन है। इसे समझाने के लिए ज्ञान में एकाग्र होने की आवश्यकता है।

देखो, अभी तक क्या कहा गया है? प्रत्येक चेतन और जड़ पदार्थ स्वयं सत् है, उसमें एक-एक समय में परिणाम होता है; वह परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है। मूल वस्तु त्रिकाल है, वह वस्तु असंयोगी—स्वयंसिद्ध है, वह किसी से निर्मित नहीं है और न कभी उसका नाश होता है; जब देखो तब वह सत्‌रूप से वर्तमान वर्त रही है।

प्रत्येक समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है, उसमें वस्तु वर्त रही है। प्रत्येक द्रव्य में तीन काल के जितने समय हैं, उतने ही परिणाम हैं। जैसे—स्वर्ण के सौ वर्ष लिए जायें तो उन सौ वर्षों में हुई कड़ा, कुण्डल, हार इत्यादि समस्त अवस्थाओं का एक पिण्ड सोना है; उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य तीन काल के समस्त परिणामों का पिण्ड है। वे परिणाम क्रमशः एक के बाद एक होते हैं। तीन काल के समस्त परिणामों का प्रवाह, वह द्रव्य का प्रवाहक्रम है और उस प्रवाहक्रम का एक समय का अंश, सो परिणाम है। तीन काल के जितने समय हैं, उतने ही प्रत्येक द्रव्य के परिणाम

हैं। उस प्रत्येक परिणाम में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—ऐसे तीन प्रकार सिद्ध किये हैं। अपने-अपने निश्चित् अवसर में प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। किसी से किसी के परिणाम का उत्पाद हो या कोई परिणाम आगे-पीछे हो—यह बात तो यहाँ से दूर, कहीं दूर उड़ गयी; कोई परिणाम आगे-पीछे नहीं होते, इस निर्णय में तो सर्वज्ञता निर्णय और ज्ञायक द्रव्य की दृष्टि हो जाती है।

आत्मा में वर्तमान जो ज्ञान अवस्था है, उसे अवस्था में ज्ञानगुण वर्त रहा है, दूसरी अवस्था होगी, तब उसमें भी वर्तमान वर्तेगा और तीसरी अवस्था के समय उसमें भी वर्तमान वर्तेगा। इस प्रकार दूसरी-तीसरी-चौथी सभी अवस्थाओं के प्रवाह का पिण्ड, सो ज्ञानगुण है। ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड, सो द्रव्य है। द्रव्य के प्रतिसमय जो परिणाम होते हैं, वे परिणाम अपनी अपेक्षा से उत्पादरूप हैं, पूर्व के अभाव की अपेक्षा से व्ययरूप हैं, और अखण्ड प्रवाह में वर्तनेवाले अंशरूप से ध्रौव्य हैं। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला परिणाम है, वह प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है; और ऐसे स्वभाव में द्रव्य नित्य प्रवर्तमान है, इसलिए द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाववाला है —ऐसा अनुमोदन करना।

प्रत्येक वस्तु पलटती हुई-नित्य है। यदि वस्तु अकेली 'नित्य' ही हो तो उसमें सुख-दु:ख इत्यादि कार्य नहीं हो सकते; और यदि वस्तु एकान्त 'पलटती' ही हो तो वह त्रिकाल स्थायी नहीं रह सकती, दूसरे ही क्षण उसका सर्वथा अभाव हो जाएगा। इसलिए वस्तु अकेली नित्य, या अकेली पलटती नहीं है, किन्तु नित्य स्थायी रहकर प्रतिक्षण पलटती है। इस प्रकार नित्य पलटती हुई वस्तु कहो या 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्' कहो, उसका यह

वर्णन है। अल्प से अल्प काल में होनेवाले परिणाम में वर्तता-वर्तता द्रव्य नित्य स्थायी है। उसके प्रत्येक परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना है—यह बात हो गयी है और वह द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है।—यह बात चल रही है।

समस्त पदार्थ सत् हैं। पदार्थ 'है'—ऐसा कहते ही उसका सत्पना आ जाता है। पदार्थों का सत्पना पहले (७८ वीं गाथा में) सिद्ध कर चुके हैं। पदार्थ सत् हैं और सत्, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है। कोई भी वस्तु हो, वह वर्तमान-वर्तमानरूप से वर्तती रहेगी न? कहीं भूत या भविष्य में नहीं रहेगी। वस्तु तो वर्तमान में ही वर्तती है और वह प्रत्येक समय का वर्तमान भी यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला न हो तो वस्तु का त्रिकाल परिवर्तनपना सिद्ध नहीं होगा। इसलिए प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले परिणाम में ही वस्तु वर्तती है। जिस प्रकार द्रव्य त्रिकाली सत् है, उसी प्रकार उसके तीनों काल के परिणाम भी प्रत्येक समय का सत् है। प्रत्येक परिणाम को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् सिद्ध करके, यहाँ परिणाम में वर्तनेवाले द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सिद्ध करते हैं।

द्रव्य का एक वर्तमान प्रवर्तित परिणाम अपने से उत्पादरूप है, अपने पहले के परिणाम की अपेक्षा से व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाह में वह ध्रौव्य है।—इस प्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है और उस परिणाम में द्रव्य वर्तता है, इसलिए द्रव्य भी उत्पाद -व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने से, उस परिणाम में वर्तनेवाले परिणामी के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध हो जाते हैं, इसलिए कहा है कि द्रव्य

को त्रिलक्षण अनुमोदना। अनुमोदना अर्थात् रुचिपूर्वक मानना, सानन्द सम्मत करना।

यदि समय-समय के परिणाम की यह बात समझ ले तो पर में खटपट करने का अहंकार न रहे और अकेले रागादि परिणामों पर भी दृष्टि न रहे, किन्तु परिणामी ऐसे त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि हो जाये और द्रव्यदृष्टि होने से आनन्द का अनुभव हुए बिना न रहे। इसलिए कहा है कि.... 'सानन्द सम्मत करना।'

जिस प्रकार त्रिकाली सत् में जो चैतन्य है, वह चैतन्य ही रहता है और जड़ है, वह जड़ ही रहता है; चैतन्य मिटकर जड़ नहीं होता और न जड़ मिटकर चैतन्य होता है। उसी प्रकार एक समय के सत् में भी—जो परिणाम जिस समय में सत् है, वह परिणाम उसी समय होता है- आगे-पीछे नहीं होता। जिस प्रकार त्रिकाली सत् है, उसी प्रकार वर्तमान भी सत् है। जिस प्रकार त्रिकाली सत् पलटकर अन्यरूप नहीं हो जाता, उसी प्रकार वर्तमान सत् पलटकर भी भूत या भविष्यरूप नहीं हो जाता। तीनों काल के समय-समय के वर्तमान परिणाम अपना स्वसमय (स्व-काल) छोड़कर पहले या पीछे के समय नहीं होते। जितने तीन काल के समय हैं, उतने ही द्रव्य के परिणाम हैं; उनमें जिस समय का जो वर्तमान परिणाम है, वह परिणाम अपना वर्तमानपना छोड़कर भूत या भविष्य में नहीं होता। बस, प्रत्येक परिणाम अपने-अपने काल में वर्तमान सत् है। उस सत् को कोई बदल नहीं सकता। सत् को बदलना माने, वह मिथ्यादृष्टि है; उसे ज्ञातास्वभाव की प्रतीति नहीं है। जिस प्रकार चेतन को बदलकर जड़ नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार द्रव्य के त्रिकाली प्रवाह में उस-उस समय के वर्तमान परिणाम को

आगे-पीछे नहीं किया जा सकता। अहो! लोगों को अपने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं है, इसलिए ज्ञेयों के ऐसे व्यवस्थित स्वभाव की प्रतीति नहीं बैठती।

जिस प्रकार वस्तु अनादि-अनन्त है, उसी प्रकार उसका प्रत्येक समय का वर्तमान भी प्रवाहरूप से अनादि-अनन्त है। वस्तु और वस्तु का वर्तमान—वह पहले-पीछे नहीं है। वस्तु का वर्तमान कब नहीं होता? कभी भी वर्तमान बिना वस्तु नहीं होती। दोनों ऐसे के ऐसे अनादि-अनन्त हैं। तीनों काल में से एक भी समय के वर्तमान को निकाल दें तो त्रिकाली वस्तु ही सिद्ध नहीं हो सकती। तीनों काल के वर्तमान का पिण्ड, सो सत् द्रव्य है, और उन तीनों काल का प्रत्येक वर्तमान परिणाम अपने अवसर में सत् है; वह अपने से उत्पादरूप है, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप और अखण्ड वस्तु के वर्तमानरूप से ध्रौव्यरूप है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम, सो सत् है और वह द्रव्य का स्वभाव है। ऐसे सत् को कौन बदल सकता है? सत् को जैसे का तैसा जान सकता है, किन्तु उसे कोई बदल नहीं सकता।

वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय का जैसा स्वभाव है, वैसा ज्ञान जानता है। अंश को अंशरूप से जानता है और त्रिकाली को त्रिकालीरूप से जानता है—ऐसा स्वभाव जानने पर अकेले अंश की रुचि न रहने से, त्रिकाली स्वभाव की रुचि की ओर श्रद्धा ढल जाती है। अंश को अंशरूप से और अंशी को अंशीरूप से श्रद्धा में लेने पर श्रद्धा का सारा बल अंश पर से हटकर त्रिकाली द्रव्य-गुण की ओर ढल जाता है, यही सम्यग्दर्शन है।

द्रव्य, गुण और पर्याय - यह तीनों स्वज्ञेय हैं। एक समय में

द्रव्य-गुण-पर्याय का पिण्ड, वह सम्पूर्ण स्वज्ञेय है। उसमें पर्याय एक समयपर्यन्त की है—ऐसा जानने से उस पर एक समयपर्यन्त का ही बल रहा; और द्रव्य भी त्रिकाली जानने पर उस पर त्रिकाली बल आया, इसलिए उसकी मुख्यता हुई और उसकी रुचि में श्रद्धा का बल ढ़ल गया। इस प्रकार स्वज्ञेय को जानने से सम्यक्त्व आ जाता है। इसलिए इस ज्ञेय-अधिकार का दूसरा नाम सम्यक्त्व-अधिकार भी है।

स्वज्ञेय, परज्ञेय से बिलकुल भिन्न है। यहाँ राग भी स्वज्ञेय में आता है। समयसार में द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से कथन है, वहाँ स्वभावदृष्टि में राग की गौणता हो जाती है, इसलिए वहाँ तो 'राग, आत्मा में होता ही नहीं; राग जड़ के साथ तादात्म्यवाला है'—ऐसा कहा जाता है। वहाँ दृष्टि अपेक्षा से राग को पर में डाल दिया और द्रव्य की दृष्टि करायी। और यहाँ, इस प्रवचनसार में ज्ञान-अपेक्षा से कथन है, इसलिए सम्पूर्ण स्वज्ञेय बताने के लिए राग को भी स्वज्ञेय में लिया है। दृष्टि-अपेक्षा से राग पर में जाता है और ज्ञान-अपेक्षा से वह स्वज्ञेय में आता है; परन्तु राग में ही स्वज्ञेय पूरा नहीं हो जाता। रागरहित द्रव्य-गुण-स्वभाव भी स्वज्ञेय है। इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को स्वज्ञेयरूप से जाना, वहाँ राग में से एकत्वबुद्धि छूटकर रुचि का बल द्रव्य की ओर ढल गया। अकेले राग को सम्पूर्ण तत्त्व स्वीकार करने से स्वज्ञेय सम्पूर्ण प्रतीति में नहीं आता था और द्रव्य-गुण-पर्यायरूप सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति होने से उस प्रतीति का बल त्रिकाली की ओर बढ़ जाता है, इसलिए त्रिकाली की मुख्यता होकर उस ओर रुचि का बल ढ़लता है। इस प्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

स्वद्रव्य-गुण-पर्याय, यह सब मिलकर स्वज्ञेय है; राग भी स्वज्ञेय है। किन्तु ऐसा जानने से रुचि का बल राग से हटकर अन्तर में ढल जाता है। त्रिकाली तत्त्व को भूलकर मात्र अंश को ही स्वीकार करती थी; वह मिथ्यारुचि थी; द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को ज्ञेयरूप जानकर, अव्यक्त—शक्तिरूप अन्तरस्वभावोन्मुख हो जाता है, तभी स्वज्ञेय को पूर्ण प्रतीति में लिया है और तभी उसने भगवान-कथित द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप सुना—ऐसा कहा जाता है।

जैसे—गुड़ को गुड़रूप से जाने और विष को विषरूप से जाने तो वह ज्ञान बराबर है, किन्तु गुड़ को विषरूप से जाने और विष को गुड़रूप से जाने तो वह ज्ञान मिथ्या है। उसी प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों मिलकर एक समय में सम्पूर्ण स्वज्ञेय है, उसमें द्रव्य को द्रव्यरूप से जाने, गुण को गुणरूप से जाने और पर्याय को पर्यायरूप से जाने तो ज्ञान सच्चा हो, किन्तु जैसा है, वैसा न जाने या क्षणिक पर्याय को ही सम्पूर्ण तत्त्व माने ले अथवा तो क्षणिक पर्याय को सर्वथा ही न जाने—तो वह ज्ञान सच्चा नहीं होता। पदार्थ के सच्चे ज्ञान बिना श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती और ज्ञान-श्रद्धान बिना सम्यक्चारित्र, वीतरागता या मुक्ति नहीं होती।

त्रिकाली तत्त्व की रुचि की ओर उन्मुख होकर सम्पूर्ण स्वज्ञेय प्रतीति में आया, तब परज्ञेय को जानने की ज्ञान की यथार्थ शक्ति विकसित हुई। ज्ञान की वर्तमान दशा रागसन्मुख रुककर उसे सम्पूर्ण स्वज्ञेय मानती थी, वह ज्ञान मिथ्या था, उसमें स्व-परप्रकाशक ज्ञान-सामर्थ्य नहीं था और ज्ञान की वर्तमान दशा में

अन्तर की सम्पूर्ण वस्तु को ज्ञेय बनाकर, उस ओर उन्मुख हो जाने से वह ज्ञान सम्यक् हुआ और उसमें स्व-परप्रकाशकशक्ति विकसित हुई।

परिणाम के प्रवाहक्रम में वर्तनेवाला द्रव्य है—ऐसा निश्चित किया, वहाँ रुचि का बल उस द्रव्य की ओर ढ़लने से रुचि सम्यक् हो गयी। उस पर्याय में राग का अंश वर्तता है, वह भी ज्ञान के ख्याल से बाहर नहीं है, ज्ञान उसे स्वज्ञेयरूप से स्वीकार करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्वज्ञेय को (द्रव्य-गुण को तथा विकारी-अविकारी पर्यायों को) स्वीकार करने से रुचि तो द्रव्य-गुण-पर्याय की ओर उन्मुख होकर सम्यक् हो गयी और ज्ञान में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का ज्ञान सच्चा हुआ—ऐसा इस ज्ञेय अधिकार का वर्णन है।

ज्ञेय के तीनों अंशों को (—द्रव्य-गुण-पर्याय को) स्वीकार करे, वह ज्ञान सम्यक् है, एक अंश को ही (राग को ही) स्वीकार करे तो वह ज्ञान मिथ्या है, और सर्वथा रागरहित स्वीकार करे तो वह ज्ञान भी मिथ्या है; क्योंकि रागपरिणाम भी साधक के वर्तते हैं, उन रागपरिणामों को स्व-ज्ञेयरूप से न जाने तो रागपरिणाम में वर्तनेवाले द्रव्य को भी नहीं माना।

रागपरिणाम भी द्रव्य के तीन काल के परिणाम की पद्धति में आ जाता है; रागपरिणाम कहीं द्रव्य के परिणाम की परम्परा से पृथक् नहीं है। तीनों काल के परिणामों की परम्परा में वर्त कर ही द्रव्य स्थित है।

निगोद या सिद्ध-कोई भी परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप

है, और उस परिणाम में द्रव्य वर्त रहा है। परिणाम की जो रीति है—जो क्रम है-जो परम्परा है-जो स्वभाव है, उसमें द्रव्य अवस्थित है। वह द्रव्य अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणामस्वभाव का अतिक्रम नहीं करता। यहाँ 'स्वभाव' कहने से शुद्ध परिणाम ही नहीं समझना किन्तु विकारी या अविकारी समस्त परिणाम, द्रव्य का स्वभाव है और वह स्वज्ञेय में आ जाता है और जो ऐसा जानता है, उसे शुद्ध परिणाम की उत्पत्ति होने लगती है। स्वज्ञेय में परज्ञेय नहीं है और परज्ञेय में स्वज्ञेय नहीं है—ऐसा जानने में ही वीतरागी श्रद्धा आ जाती है। क्योंकि मेरा स्वज्ञेय, परज्ञेयों से भिन्न है—ऐसा निर्णय करने से किसी भी परज्ञेय के अवलम्बन का अभिप्राय नहीं रहा, इसलिए स्वद्रव्य को अवलम्बन से सम्यक्श्रद्धा हुई। सम्पूर्ण द्रव्य, सो परिणामी और उसका अंश, सो परिणाम है; उसमें पूर्ण परिणामी की अन्तर्दृष्टि बिना परिणाम का सच्चा ज्ञान नहीं होता। परिणामों की परम्परा को द्रव्य नहीं छोड़ता, किन्तु उस परम्परा में ही वर्तता है; इसलिए लक्ष्य का बल कहाँ गया ?—द्रव्य पर। इस प्रकार इसमें भी द्रव्यदृष्टि आ जाती है।

द्रव्य तो अनन्त शक्ति का त्रिकाली पिण्ड है और परिणाम तो एक समयपर्यन्त का अंश है—ऐसा जाना, वहाँ श्रद्धा का बल अनन्त शक्ति के पिण्ड की ओर ढल गया, इससे द्रव्य की प्रतीति हुई और द्रव्य-पर्याय दोनों का यथार्थ ज्ञान हुआ।

प्रत्येक वस्तु अपने परिणामस्वभाव में वर्त रही है, उस परिणाम के तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक) हैं; इसलिए उस परिणाम में प्रवर्तित वस्तु में भी यह तीनों लक्षण आ जाते हैं, क्योंकि

वस्तु का अस्तित्व परिणामस्वभाव से पृथक् नहीं है। वस्तु 'है'— ऐसा कहते ही उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आ जाते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बिना 'वस्तु है'—ऐसा सिद्ध नहीं होता। परिणाम 'है'—ऐसा कहने से वह परिणाम भी उत्पाद -व्यय-ध्रौव्यवाला है। 'अस्तित्व (—सत्)' उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के बिना नहीं होता। इसलिए सत्त्व को त्रिलक्षण अनुमोदना।

पहले यथार्थ श्रवण करके वस्तु को बराबर जाने कि—'यह ऐसा ही है' तो ज्ञान निःशंक हो और ज्ञान निःशंक तो तभी अन्तर में उसका मंथन करके निर्विकल्प अनुभव करे, किन्तु जहाँ ज्ञान ही मिथ्या हो और 'ऐसा होगा या वैसा'—ऐसी शंका में झूलता हो, वहाँ अन्तर में मंथन कहाँ से होगा? निःशंक ज्ञानरहित मंथन भी मिथ्या होता है अर्थात् मिथ्याज्ञान और मिथ्याश्रद्धा होती है। पहले वस्तु-स्थिति क्या है, वह बराबर ध्यान में लेना चाहिए। वस्तु को बराबर ध्यान में लिये बिना किसका मंथन करेगा?

वस्तु, परिणाम का उल्लंघन नहीं करती, क्योंकि परिणाम सत् है। यदि वस्तु, परिणाम का उल्लंघन करे, तब तो 'सत्' का ही उल्लंघन करे, इसलिए 'है' ऐसा सिद्ध न हो। वस्तु तीनों काल के परिणाम के प्रवाह में वर्तती है।

अहो, यह तो सम्पूर्ण ज्ञेय का पिण्ड प्रतीति में लेने का मार्ग कहो अथवा पूर्ण ज्ञायक पिण्ड की दृष्टि कहो; सम्यक् नियतवाद कहो या यथार्थ मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ कहो, वीतरागता कहो अथवा तो धर्म कहो; वह सब इसमें आ जाता है।

श्री आचार्यदेव कहते हैं कि वस्तु का स्वभाव ही यह

(उपरोक्तानुसार) है; ऐसा वस्तुस्वभाव आनन्दपूर्वक मानना—सम्मत करना। जो ऐसे वस्तुस्वभाव को जाने, उसे अपूर्व आनन्द हुए बिना न रहे। जहाँ वस्तु को त्रिलक्षण जाना, वहाँ आत्मा स्वयं सम्यक् स्वभाव में ढ़ले बिना नहीं रहता—वस्तु सम्यक्-स्वभावरूप परिणमित होनेपर अपूर्व आनन्द का अनुभव होता ही है। इसलिए यहाँ कहा है कि ऐसे वस्तुस्वभाव को आनन्द से मान्य करना।

देखो, उस-उस परिणाम का वस्तु उल्लंघन नहीं करती, इसलिए दृष्टि कहाँ गयी? वस्तु पर दृष्टि गयी; परिणाम-परिणामी की एकता हुई; इसलिए सम्पूर्ण सत् एकाकार हो गया—सम्पूर्ण स्वज्ञेय अभेद हो गया। ऐसे स्वज्ञेय को जाने और माने, वहाँ वस्तुस्वभाव की सम्यक्प्रतीति और अपूर्व आनन्द का अनुभव हुए बिना नहीं रहता।

जिस प्रकार केवलज्ञानी लोकालोक—ज्ञेय को सत्रूप से जानता है, उसी प्रकार सम्यक्दृष्टि भी उसे ज्ञेयरूप से स्वीकार करता है, और उसे जाननेवाले अपने ज्ञानस्वभाव को भी वह स्वज्ञेयरूप से स्वीकार करता है। वहाँ उसकी रुचि स्वभाववान् ऐसे अन्तरद्रव्य की ओर ढलती है, उसी रुचि के बल से निर्विकल्पता हुए बिना नहीं रहती; निर्विकल्पता में आनन्द का अनुभव भी साथ ही होता है।

प्रश्न : कितने काल में कितने जीव मोक्ष में जाते हैं—ऐसी तो कोई बात इसमें नहीं आयी?

उत्तर : इतने काल में इतने जीव मोक्ष जाते हैं—ऐसी गिनती की यहाँ मुख्यता नहीं है, किन्तु मोक्ष कैसे हो? उसकी मुख्य बात है। स्वयं ऐसे यथार्थ स्वभाव को पहिचाने तो अपने को सम्यक्त्व

और वीतरागता हो और मोक्ष हो जाये। आत्मा का मोक्ष कब होता है—ऐसी काल की मुख्यता नहीं है, किन्तु आत्मा का मोक्ष किस प्रकार होता है, यही मुख्य प्रयोजन है और इसी की यह बात चल रही है।

जिस प्रकार सत् है, उसी प्रकार स्वीकार करे तो ज्ञान सत् हो और शान्ति आये। इस गाथा में दो सम-अंक [९९] हैं और वह भी दो नौ। नव प्रकार के क्षायिकभाव हैं, इसलिए नव का अंक क्षायिकभाव सूचक है और दो नव इकट्ठे हुए, इसलिए समभाव—वीतरागता बतलाते हैं—क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र-दोनों साथ आ जायें, ऐसी अपूर्व बात है। अंक तो जो है सो है, किन्तु यहाँ अपने भाव का आरोप करना है न!

वर्तमान—प्रवर्तित परिणाम में वस्तु वर्त रही है, इसलिए सम्पूर्ण वस्तु ही वर्तमान में वर्तती है। वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाली है। यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहकर सत् सिद्ध करते हैं।

आत्मा सत्, जड़ सत्, एक द्रव्य के अनन्त गुण सत्, तीन काल के स्व-अवसर में होनेवाले परिणाम सत्, प्रत्येक समय के परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक सत्! बस, इस सत् में कोई फेरफार नहीं होता।—ऐसा स्वीकार किया वहाँ 'मिथ्यात्व को बदलकर सम्यक्त्व करूँ'—यह बात नहीं रही। क्योंकि जिसने ऐसा स्वीकार किया, उसने अपने ज्ञायकभाव को स्वीकार किया और वह जीव द्रव्यस्वभावोन्मुख हुआ, वहाँ वर्तमान परिणाम में सम्यक्त्य का उत्पाद हुआ, और उस परिणाम में पूर्व के मिथ्यात्वपरिणाम का तो अभाव ही है। पूर्व के तीव्र पाप-परिणाम, वर्तमान परिणाम में बाधक नहीं होते, क्योंकि वर्तमान में उनका

अभाव है। 'पूर्व के तीव्र पाप के परिणाम इस समय बाधक होंगे'—ऐसा जिसने माना, उसको वह विपरीत मान्यता बाधक होती है, किन्तु पूर्व के पाप तो उसको भी बाधक नहीं है। 'पूर्व के तीव्र पाप के परिणाम इस समय बाधक होंगे'—ऐसा जिसने माना, उसने द्रव्य को त्रिलक्षण नहीं जाना। यदि 'त्रिलक्षण द्रव्य के वर्तमान उत्पाद-परिणाम में पूर्व परिणाम का व्यय है, इसलिए पूर्व परिणाम बाधा देते हैं'—ऐसा वह न माने, किन्तु प्रतिसमय के वर्तमान परिणाम को स्वतन्त्र सत् जाने और उसकी दृष्टि, वे परिणाम जिसके हैं, ऐसे द्रव्य पर जायें; इसलिए द्रव्यदृष्टि में उसे वीतरागता का ही उत्पाद होता जाये — इस प्रकार इसमें मोक्षमार्ग आ जाता है।

वीतराग या राग, ज्ञान या अज्ञान, सिद्ध या निगोद किसी भी एक समय के परिणाम को यदि निकाल दें तो द्रव्य का सत्पना ही सिद्ध नहीं होता; क्योंकि उस-उस समय के परिणाम में द्रव्य वर्त रहा है, इसलिए अपने क्रमबद्धपरिणामों के प्रवाह में वर्तमान वर्त रहे द्रव्य को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही आनन्द से मानना।

स्वभाव में अवस्थित द्रव्य सत् है—यह बात सिद्ध करने के लिए प्रथम तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम कहकर स्वभाव सिद्ध किया, और उसे स्वभाव में द्रव्य नित्य अवस्थित है—ऐसा अभी सिद्ध किया।

पहले परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने के लिए प्रदेशों का उदाहरण था, वह परिणाम की बात पूर्ण हुई और अब द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य मोतियों के हार का दृष्टान्त देकर समझायेंगे।

पहले 'वर्तमान' को सिद्ध किया और फिर उस 'वर्तमान में

वर्तनेवाला' सिद्ध किया। परिणाम किसके ? परिणामी के। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्युयक्त वर्तमान परिणाम और उस परिणाम में वर्तनेवाला उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त द्रव्य, वह सम्पूर्ण स्वज्ञेय है। इसकी प्रतीति, सो सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति है। सम्पूर्ण स्वज्ञेय की प्रतीति करने से रुचि का बल वर्तमान अंश पर से हटकर त्रिकाली द्रव्य की ओर ढलता है—यही सम्यग्दर्शन है।

परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित् करने से भी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, क्योंकि द्रव्य अपने परिणामस्वभाव को नहीं छोड़ता।

◆ परिणामस्वभाव में कौन वर्तता है ?—द्रव्य।

◆ परिणाम को कौन नहीं छोड़ता ?—द्रव्य।

◆ इसलिए ऐसा निश्चित् करने से दृष्टि द्रव्य पर जाती है, और द्रव्यदृष्टि होते ही परिणाम में सम्यक्त्व का उत्पाद और मिथ्यात्व का व्यय हो जाता है। इस प्रकार द्रव्य की दृष्टि में ही सम्यक्त्व का पुरुषार्थ आ जाता है। इसके अतिरिक्त मिथ्यात्व दूर करने के लिए और सम्यक्त्व प्रगट करने के लिए दूसरा कोई अलग पुरुषार्थ करना नहीं रहता। द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दृष्टि है।

❀

जिसे धर्म करना हो, उसे कैसा वस्तुस्वरूप जानना चाहिए—उसकी यह बात है। धर्म आत्मा की पर्याय है, इसलिए वह आत्मा में ही होता है। आत्मा का धर्म पर से नहीं होता और न पर के द्वारा ही होता है और पर्याय का धर्म पर्याय में से नहीं होता, किन्तु द्रव्य में से होता है; धर्म तो पर्याय में ही होता है, किन्तु उस पर्याय द्वारा

(पर्याय-सन्मुख देखने से या पर्याय का आश्रय करने से) धर्म नहीं होता, किन्तु द्रव्य की सन्मुखता से पर्याय में धर्म होता है। पर का तो आत्मा में अभाव है, इसलिए परसन्मुख देखने से धर्म नहीं होता।

अब, जिसे अपनी अवस्था में धर्म करना है, उसे अधर्म को दूर करना है और धर्मरूप होकर आत्मा को अखण्ड बनाये रखना है। देखो, इसमें 'धर्म करना है'—ऐसा कहने से उसमें नवीन पर्याय के उत्पाद की स्वीकृति आ जाती है; 'अधर्म को दूर करना है'—उसमें पूर्व पर्याय के व्यय की स्वीकृति आ जाती है; और 'आत्मा को अखण्ड बनाये रखना है'—इसमें अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्य का स्वीकार आ जाता है। इस प्रकार धर्म करने की भावना में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभाव की स्वीकृति आ जाती है। यदि वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हों तो अधर्म दूर होकर धर्म की उत्पत्ति न हो और आत्मा अखण्ड स्थित न रहे और वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी यदि काल के छोटे से छोटे भाग में न हों तो एक समय में अधर्म दूर करके धर्म न हो सके। इसलिए धर्म करनेवाले को वस्तु को प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वभाववाली जानना चाहिए।

द्रव्य-गुण नित्य हैं और पर्याय क्षणिक हैं; उन तीनों को जानकर नित्यस्थायी द्रव्य की ओर वर्तमान पर्याय को उन्मुख किये बिना धर्म नहीं होता। वस्तु में अवस्था तो नवीन -नवीन होती ही रहती है। यदि नवीन अवस्था न हो तो धर्म कैसे प्रगट हो? और यदि पुरानी अवस्था का अभाव न हो तो अधर्म कैसे दूर हो? तथा परिणामों में अखण्डरूप से ध्रौव्यता न रहती हो तो द्रव्य स्थित कहाँ

रहे? इसलिए वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, यह तीनों जानना चाहिए। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, यह लक्षण है और परिणाम, लक्ष्य है तथा परिणाम में वस्तु वर्तती है, इसलिए वह वस्तु भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे त्रिलक्षणवाली ही है।

कोई भी परिणाम लो तो प्रवाह की अखण्ड धारा में वह ध्रौव्य है, अपने स्वकाल-अपेक्षा से उत्पादरूप है और पूर्व परिणाम-अपेक्षा से व्ययरूप है। इस प्रकार परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, लक्षण है और परिणाम, लक्ष्य है। परिणाम किसी अन्य पदार्थ के कारण नहीं होते, किन्तु वे स्वयं अपने अवसर में सत् हैं। भगवान की वीतरागी मूर्ति के कारण या गुरु के उपदेश के कारण जीव को राग के अथवा ज्ञान के परिणाम हुए—ऐसा नहीं है तथा परजीव दुःखी है, इसलिए अपने को अनुकम्पा के भाव उत्पन्न हुए, ऐसा भी नहीं है, किन्तु जीव के प्रवाहक्रम में उस-उस भाववाले परिणाम सत् हैं। किसी भी द्रव्य के परिणाम की अखण्ड धारा में एक भी समय का खण्ड नहीं पड़ता। यदि इस प्रकार परिणामों को जाने तो उन परिणामों के प्रवाह मे प्रवर्तमान द्रव्य को भी पहिचान ले, क्योंकि अपने परिणाम के स्वभाव को कोई द्रव्य नहीं छोड़ता —उल्लंघन नहीं करता।

ऐसा वस्तुस्वभाव समझे बिना कहीं बाहर से धर्म नहीं आ जाएगा। जैसे—लकड़ी के भारे बेचने से लखपति नहीं हुआ जा सकता किन्तु हीरा-माणिक की परख करना सीखे तो उसके व्यापार से लखपति होता है। (यह तो दृष्टान्त है।) उसी प्रकार अन्तर के चैतन्य-हीरे को परखने की कला में ही धर्म की कमाई हो सकती है। इसके अतिरिक्त किन्हीं बाह्य-क्रियाकाण्डों से या

शुभराग से धर्म की कमाई नहीं होती। देखो, यह तो द्रव्यानुयोग का सूक्ष्म विषय है, इसलिए अन्तर में सूक्ष्म दृष्टि करे तो समझ में आ सकता है।

वस्तु में जिस काल में जो परिणाम होता है, वह सत् है; तीन काल के परिणाम अपने -अपने काल में सत् हैं और ऐसे परिणामों में द्रव्य वर्तमान वर्त रहा है। वह द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—ऐसे त्रिलक्षणवाला है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—ऐसे तीन भिन्न-भिन्न लक्षण नहीं है, किन्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, यह तीनों मिलकर द्रव्य का एक लक्षण है।

भाई! अपने ज्ञान में तू ऐसा निर्णय कर कि द्रव्य में जिस समय जो परिणाम है, उस समय वही सत् है, उसका मैं ज्ञाता हूँ, उसमें कोई फेरफार करनेवाला नहीं हूँ।—ऐसा जानने से पर्याय के राग का स्वामित्व और अंशबुद्धि दूर हो जाती है और ध्रौव्य के लक्ष्य से सम्यक्त्व एवं वीतरागता होती है—यही धर्म है।

प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न है; भिन्न-भिन्न द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा उस-उस द्रव्य की सत्ता पहिचानी जाती है। एक द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा दूसरे द्रव्य की सत्ता नहीं जानी जाती। शरीर में रोटी नहीं आयी, उस परिणाम द्वारा पुद्गलद्रव्य की सत्ता जानी जाती है, किन्तु उसके द्वारा जीव के धर्मपरिणाम नहीं पहिचाने जा सकते। रोटी नहीं आयी, वहाँ पुद्गलद्रव्य ही अपनी परिणामधारा में वर्तता हुआ उस परिणाम द्वारा लक्षित होता है और उस समय आत्मा अपने ज्ञानादि परिणामों द्वारा लक्षित होता है। जिस द्रव्य के जो परिणाम हों, उनके द्वारा द्रव्य को पहिचानना चाहिए; उसके बदले एक द्रव्य के परिणाम दूसरे द्रव्य ने किये—

ऐसा जो मानता है, उसने वस्तु के परिणामस्वभाव को नहीं जाना अर्थात् सत् को नहीं जाना है। वस्तु सत् है और सत् का लक्ष्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है, इसलिए वस्तु में स्वभाव से ही प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते रहते हैं, तो दूसरा उसमें क्या करेगा ?— या तो ज्ञाता रहकर वीतरागभाव करेगा, या फेरफार करने का अभिमान करके मिथ्याभाव करेगा, किन्तु पदार्थ में तो कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता।

'जीव के व्रत करने के भावों के कारण द्वारिकानगरी जलने से बच गयी, और कोई व्रत करनेवाला नहीं रहा, इसलिए द्वारिका नगरी जल गयी'—ऐसा जो मानता है, उसे वस्तु के स्वभाव की खबर नहीं है। अथवा तो—किसी जीव के क्रोध के कारण द्वारिकानगरी जल गयी—ऐसा भी नहीं है। द्वारिकानगरी का प्रत्येक पुद्गल अपने परिणाम की धारा में वर्त रहा द्रव्य है। अपने प्रवाहक्रम में अपने स्वकाल में उसके परिणाम हुए हैं और व्रत या क्रोधादि, जीव के परिणाम में भिन्न-भिन्न वर्तते हैं। उनमें एक के परिणाम के कारण दूसरे के परिणाम हों या रुकें—ऐसा माननेवाला मूढ़ है; भगवान कथित त्रिलक्षण वस्तुस्वभाव को उसने नहीं जाना है।

वस्तु प्रतिसमय अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को करेगी या पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य करने जाएगी ? परवस्तु भी अपने स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाली है। वस्तु अपने वर्तमान परिणाम का उल्लंघन करके दूसरे के परिणाम करने जाये—ऐसा कभी नहीं हो सकता। निमित्त के बल से उपादान के परिणाम हों, यह बात इसमें कहीं नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु स्वयं नित्य परिणामी स्वभाववाली है—'परिणमन करता हुआ-परिणमन करता हुआ

ही नित्य' स्वभाव है। ऐसे स्वभाव में सदैव विद्यमान वस्तु स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है—ऐसा सानन्द मानना-अनुमोदन करना।

❀

अब, मोतियों के हार का दृष्टान्त देकर वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य समझाते हैं:—

जिस प्रकार—'जिसने (अमुक) लम्बाई ग्रहण की है, ऐसे लटकते हुए मोती के हार में, अपने-अपने स्थान में प्रकाशित समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होने से और पहले-पहले के मोती प्रगट न होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचयिता डोरा अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है.....'

हार में एक-दो मोती नहीं हैं किन्तु अनेक मोतियों का हार है और वह हार जैसा -तैसा नहीं पड़ता है, किन्तु 'लटकता' हुआ लिया है। 108 मोतियों का हार लिया जाये तो उसमें सभी मोती अपने-अपने स्थान में प्रकाशित हैं और पीछे-पीछे के स्थान में पीछे-पीछे का मोती प्रकाशित होता है, इसलिए उन मोतियों की अपेक्षा से हार का उत्पाद है तथा एक के बाद दूसरे मोती को लक्ष्य में लेने से पहले का मोती लक्ष्य में से छूट जाता है, इसलिए पहले का मोती दूसरे स्थान पर प्रकाशित नहीं होता—इस अपेक्षा से हार का व्यय है; और सभी मोतियों में परस्पर सम्बन्ध जोड़नेवाला अखण्ड डोरा होने से हार ध्रौव्यरूप है।—इस प्रकार हार, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, ऐसे त्रिलक्षणवाला निश्चित होता है। हार का प्रत्येक

मोती अपने-अपने स्थान में है; पहला मोती दूसरे नहीं होता, दूसरा मोती तीसरे नहीं होता। जो जहाँ है, वहाँ वही है; पहले स्थान में पहला मोती है, दूसरे स्थान में दूसरा मोती है और हार का अखण्ड डोरा सर्वत्र है। मोती की माला फेरते समय पीछे-पीछे का मोती अंगुली के स्पर्श से आता जाता है, उस अपेक्षा से उत्पाद, पहले -पहले का मोती छूटता जाता है, उस अपेक्षा से व्यय, और माला के प्रवाहरूप से प्रत्येक मोती में वर्तती हुई माला ध्रौव्य है। इस प्रकार उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है। इस प्रकार दृष्टान्त कहा। अब सिद्धान्त कहते हैं :—

'मोती के हार की भाँति, जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है, ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य में, अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित होते हुए (प्रगट होते हुए) समस्त परिणामों में, पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होने से और पहले-पहले के परिणाम प्रगट न होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचयिता प्रवाह अवस्थित (-स्थायी) होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है।'

◆ दृष्टान्त में अमुक लम्बाईवाला हार था, सिद्धान्त में नित्यवृत्तिवाला द्रव्य है।

◆ दृष्टान्त में लटकता हार था; सिद्धान्त में परिणमन करता हुआ द्रव्य है।

◆ दृष्टान्त में मोतियों का अपना-अपना स्थान था, सिद्धान्त में परिणामों का अपना-अपना अवसर है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाला सम्पूर्ण द्रव्य सत् है, उसमें कहीं फेरफार नहीं होता—इस प्रकार सम्पूर्ण सत् लक्ष्य में आये

बिना ज्ञान में धैर्य नहीं होता। जिसे पर में कहीं फेरफार करने की बुद्धि है, उसका ज्ञान अधीर-आकुल-व्याकुल है और सत् जानने से कहीं भी फेरफार की बुद्धि नहीं रही; इसलिए ज्ञान धीर होकर अपने में स्थिर हुआ —ज्ञातारूप से रह गया। ऐसे का ऐसा सम्पूर्ण द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव से सत् पड़ा है—इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जाने से सम्यक्त्व का उत्पाद और मिथ्यात्व का व्यय हुआ; और तत्पश्चात् भी उस द्रव्य की सन्मुखता से क्रमश: वीतरागता की वृद्धि होती जाती है।—ऐसा धर्म है।

प्रत्येक द्रव्य नित्य-स्थायी है; नित्य-स्थायी द्रव्य लटकते हुए हार की भाँति सदैव परिणमित होता है; उसके परिणाम अपने-अपने अवसर में प्रकाशित होते हैं। जिस प्रकार माला में मोतियों का क्रम निश्चित जमा हुआ है; माला फिराने से वह क्रम उल्टा-सीधा नहीं होता। उसी प्रकार द्रव्य के तीन काल के परिणामों का निश्चित् स्व-अवसर है, द्रव्य के तीन काल के परिणामों का अपना-अपना जो अवसर है, उस अवसर में ही वे होते हैं; आगे-पीछे नहीं होते। ऐसा निश्चय करते ही ज्ञान में वीतरागता होती है। यह निश्चित करने से अपना वीर्य पर से विमुख होकर द्रव्योन्मुख हो गया, पर्यायमूढ़ता नष्ट हो गयी, और द्रव्य की सन्मुखता से वीतरागता की उत्पत्ति होने लगी। सामनेवाले पदार्थ के परिणाम उसके अवसर के अनुसार और मेरे परिणाम मेरे अवसर के अनुसार—ऐसा निश्चित किया, इसलिए पर में या स्व में कहीं भी परिणाम के फेरफार की बुद्धि न रहने से ज्ञान, ज्ञान में ही एकाग्रता को प्राप्त होता है। उसी को धर्म और मोक्षमार्ग कहते हैं।

एक ओर केवलज्ञान और सामने द्रव्य के तीन काल के स्व-अवसर में होनेवाले समस्त परिणाम; इनमें फेरफार होता ही नहीं। लोग भी 'हाथ पर आम नहीं उगते'—ऐसा कहकर वहाँ धैर्य रखने को कहते हैं; उसी प्रकार 'द्रव्य के परिणाम में फेरफार नहीं होता'—ऐसी वस्तुस्थिति की प्रतीति करने से ज्ञान में धैर्य आ जाता है और जहाँ ज्ञान धीर होकर स्वोन्मुख होने लगा, वहाँ मोक्षपर्याय होते देर नहीं लगती। इस प्रकार क्रमबद्ध-पर्याय की प्रतीति में मोक्षमार्ग आ जाता है।

द्रव्य के समस्त परिणाम स्व-अवसर में प्रकाशित होते हैं, यह सामान्यरूप से बात की; उसमें अब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को उतारते हैं। द्रव्य जब देखो तब वर्तमान परिणाम में वर्तता है। वर्तमान में उस काल के जो परिणाम हैं, उस काल में वही प्रकाशित होते हैं—उनके पहले के परिणाम उस समय प्रकाशित नहीं होते। पहले परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करते समय 'वर्तमान परिणाम पूर्व-परिणाम के व्ययरूप हैं'—ऐसा कहा था, और यहाँ द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सिद्ध करने में कथनशैली में परिवर्तन करके ऐसा कहा है कि 'वर्तमान परिणाम के समय पूर्व के परिणाम प्रगट नहीं होते;' इसलिए उन पूर्व परिणामों की अपेक्षा से द्रव्य व्ययरूप है। जिस परिणाम में द्रव्य वर्त रहा हो, उस परिणाम की अपेक्षा द्रव्य उत्पादरूप है, उसके पूर्व के परिणाम—जो कि इस समय प्रगट नहीं हैं—की अपेक्षा से द्रव्य व्ययरूप है, और समस्त परिणामों में अखण्ड बहते हुए द्रव्य के प्रवाह की अपेक्षा से वह ध्रौव्यरूप हैं, इस प्रकार द्रव्य का त्रिलक्षणपना ज्ञान में निश्चित्

होता है। ऐसा ज्ञेयों का निर्णय करनेवाला ज्ञान स्व में स्थिर होता है, उसका नाम 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' है।

मोतियों की माला लेकर जप कर रहा हो, उसमें पहले एक मोती अंगुली के स्पर्श में आता है और फिर वह छूटकर दूसरा मोती स्पर्श में आता है, इस समय पहला मोती स्पर्श में नहीं आता, इसलिए पहले मोती के स्पर्श की अपेक्षा से माला का व्यय हुआ, दूसरे मोती के स्पर्श की अपेक्षा माला का उत्पाद हुआ, और 'माला' रूप से प्रवाह चालू रहा, इसलिए माला ध्रौव्य रही। इस प्रकार एक के पश्चात् एक—क्रमशः होनेवाले परिणामों में वर्तनेवाले द्रव्य में भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य समझना।

कोई कहे कि 'उत्पाद-व्यय तो पर्याय के ही होते हैं और द्रव्य तो ध्रौव्य ही है, उसमें परिणमन नहीं होता।' तो ऐसा नहीं है। द्रव्य एकान्त नित्य नहीं है, किन्तु नित्य-अनित्यस्वरूप है, इसलिए परिणाम बदलने से उन परिणामों में वर्तनेवाला द्रव्य भी परिणमित होता है। यदि परिणाम का उत्पाद होने से द्रव्य भी नवीन परिणामरूप से उत्पन्न न होता हो तो द्रव्य भूतकाल में रह जाएगा अर्थात् वह वर्तमान-वर्तमानरूप नहीं वर्त सकेगा, और उसका अभाव ही हो जाएगा। इसलिए परिणाम का उत्पाद-व्यय होने से द्रव्य भी उत्पाद-व्ययरूप परिणमित होता ही है। द्रव्य के परिणमन के बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय नहीं होंगे और द्रव्य की अखण्ड ध्रौव्यता भी निश्चित नहीं होगी; इसलिए द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला ही है। 'पर्याय में ही उत्पाद-व्यय हैं और द्रव्य तो ध्रौव्य ही रहता है, उसमें उत्पाद-व्यय होते ही नहीं'—ऐसा नहीं है। परिणाम के

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में प्रवर्तमान द्रव्य भी एक समय में त्रिलक्षणवाला है।

अहो! स्व या पर प्रत्येक द्रव्य के परिणाम अपने-अपने काल में होते हैं। परद्रव्य के परिणाम उस द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से होते हैं और मेरे परिणाम मेरे द्रव्य में क्रमानुसार होते हैं।—ऐसा निश्चित् करने से परद्रव्य के ऊपर से दृष्टि हट गयी और स्वोन्मुख हुआ। अब, स्व में भी पर्याय पर से दृष्टि हट गयी, क्योंकि उस पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती, किन्तु द्रव्य में से पर्याय प्रगट होती है; इसलिए द्रव्य पर दृष्टि गयी। उसे त्रिकाली सत् की प्रतीति हुई। ऐसी त्रिकाली सत् की प्रतीति होने से द्रव्य अपने परिणाम में स्वभाव की धारारूप बहता, और विभाव की धारा का नाश करता हुआ परिणमन करता है; इसलिए द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना।

पहले परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात की थी, और यहाँ द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात की है।

द्रव्य की सत्ता अर्थात् द्रव्य का अस्तित्व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है। मात्र उत्पादरूप, व्ययरूप या ध्रौव्यरूप द्रव्य की सत्ता नहीं है, किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—ऐसी तीन लक्षणवाली ही द्रव्य की सत्ता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—ऐसी तीन पृथक्-पृथक् सत्तायें नहीं हैं,किन्तु वे तीनों मिलकर एक सत्ता है।

पहले तो जो परिणाम उत्पन्न हुए, वे अपनी अपेक्षा से उत्पादरूप, पूर्व की अपेक्षा से व्ययरूप और अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्यरूप—ऐसी परिणाम की बात थी; और यहाँ तो अब अन्तिम

योगफल निकालकर द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उतारते हुए ऐसा कहा है कि द्रव्य में पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं, इससे द्रव्य का उत्पाद है, पहले-पहले के परिणाम उत्पन्न नहीं होते, इसलिए द्रव्य व्ययरूप है, और सर्वपरिणामों में अखण्डरूप से प्रवर्तमान होने से द्रव्य ही ध्रौव्य है। इस प्रकार द्रव्य को त्रिलक्षण अनुमोदना।

अहो! समस्त द्रव्य अपने वर्तमान परिणामरूप से उत्पन्न होते हैं, पूर्व के परिणाम वर्तमान में नहीं रहते, इसलिए पूर्व परिणामरूप से व्यय को प्राप्त हैं और अखण्डरूप से समस्त परिणामों के प्रवाह में द्रव्य ध्रौव्यरूप से वर्तते हैं। बस, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से वर्तते हुए द्रव्य टंकोत्कीर्ण सत् हैं। ऐसे सत् में कुछ भी आगे-पीछे नहीं होता। अपने ज्ञान में ऐसे टंकोत्कीर्ण सत् को स्वीकार करने से, फेरफार करने की बुद्धि तथा 'ऐसा क्यों' ऐसी विस्मयता दूर हुई, सम्यक्श्रद्धा और वीतरागता आ गयी। इसलिए ज्ञायकपना मोक्ष का मार्ग हुआ।

यह 'वस्तुविज्ञान' कहा जा रहा है। पदार्थ का जैसा स्वभाव है, वैसा ही उसका ज्ञान करना, सो पदार्थविज्ञान है। ऐसे पदार्थविज्ञान के बिना कभी शान्ति नहीं होती। जहाँ प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाली है—ऐसा जाना, वहाँ वस्तु के भिन्नत्व की वाड़ बँध गयी। मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में पर का अभाव है और पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में मेरा अभाव है; मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय में मैं, और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय में पर —ऐसा निश्चित करने से पर के द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वामित्व छोड़कर स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का रक्षक हुआ अर्थात् ध्रौव्य द्रव्य के आश्रय से

निर्मल पर्याय का उत्पाद होने लगा, वही धर्म है। पहले, पर को मैं बदल दूँ—ऐसा मानता था, तब पराश्रयबुद्धि से विकारभावों की ही उत्पत्ति होती थी और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की रक्षा नहीं करता था; इसलिए वह अधर्म था।

आचार्य भगवान ने इस गाथा में सत् को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त बतलाकर अद्भुत बात की है। वर्तमान-वर्तमान समय के परिणाम की यह बात है, क्योंकि सम्पूर्ण द्रव्य वर्तमान परिणाम में साथ ही वर्त रहा है। [यहाँ पूज्य स्वामीजी का आशय यह समझाने का है कि परिणाम और द्रव्य दोनों साथ ही हैं। द्रव्य कभी भी परिणाम से रहित नहीं होता, परिणाम कभी भी द्रव्य से रहित नहीं होता। परिणाम इस समय हुए और द्रव्य गतकाल में रह जाये - ऐसा नहीं होता और द्रव्य है किन्तु परिणाम नहीं है—ऐसा भी नहीं होता। इसलिए परिणाम और द्रव्य दोनों वर्तमान में साथ ही हैं—ऐसा समझना] द्रव्य में स्वकाल में सदैव वर्तमान परिणाम होते हैं; जब देखो तब द्रव्य अपने वर्तमान परिणाम में ही वर्त रहा है; ऐसे वर्तमान में प्रवर्तमान द्रव्य की प्रतीति, सो वीतरागता का मूल है।

'परिणाम का स्व-अवसर' कहा, वहाँ परिणाम का जो वर्तन है, वही उसका अवसर है; अवसर और परिणाम दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। जिसका जो अवसर है, उस समय वही परिणाम वर्तता है, उस परिणाम में वर्तता हुआ द्रव्य उत्पादरूप है, उससे पूर्व के परिणाम में द्रव्य नहीं वर्तता, इससे वह व्ययरूप है और सर्वत्र अखण्डपने की अपेक्षा से द्रव्य ध्रौव्य है। इस प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि पाता है।

जीव और अजीव समस्त द्रव्य और उनके अनादि-अनन्त

परिणाम सत् हैं, वह सत् स्वयंसिद्ध है, उसका कोई दूसरा रचयिता या परिणमन करानेवाला नहीं है। जिस प्रकार कोई द्रव्य अपना स्वरूप छोड़कर अन्यरूप नहीं होता, उसी प्रकार द्रव्य के कोई परिणाम भी आगे-पीछे नहीं होते। द्रव्य में अपने काल में प्रत्येक परिणाम उत्पन्न होता है, पूर्व के परिणाम उत्पन्न नहीं होते और द्रव्य अखण्ड धारारूप बना रहता है।—ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाले द्रव्य को जानने से, अपने ज्ञायकस्वभाव की प्रतीति होती है और उस ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता से भगवान आत्मा स्वभावधारा में बहता है, विभावधारा से व्यय को प्राप्त होता है और उस प्रवाह में स्वयं अखण्डरूप से ध्रुव रहता है; इस प्रकार वीतरागता होकर केवलज्ञान और मुक्ति होती है।

अहो! मुक्ति के कारणभूत ऐसा लोकोत्तर वस्तुविज्ञान समझानेवाले सन्तों को शत्-शत् वन्दन हो!

[गाथा 99 टीका समाप्त]

पदार्थ का परिणामस्वभाव

'प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभाव में रहता है, इसलिए 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है।' प्रत्येक वस्तु तीनों काल अपने स्वभाव में अर्थात् अपने परिणाम में रहती है। सुवर्ण अपने कुण्डल, हार आदि परिणाम में वर्तता है; कुण्डल, हार आदि परिणामों से सुवर्ण पृथक् नहीं वर्तता। उसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने वर्तमान वर्तते हुए परिणाम में वर्तता है, अपने परिणाम से पृथक् कोई द्रव्य नहीं रहता। कोई भी पदार्थ अपने परिणामस्वभाव का उल्लंघन करके पर के परिणाम का स्पर्श नहीं करता, और परवस्तु उसके परिणाम का उल्लंघन करके अपने को स्पर्श नहीं करती। प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न अपने-अपने परिणाम में ही रहती है। आत्मा अपने ज्ञान या रागादि परिणाम में स्थित है, किन्तु शरीर की अवस्था में आत्मा विद्यमान नहीं हैं। शरीर की अवस्था में पुद्गल विद्यमान है। शरीर के अनन्त रजकणों में भी वास्तव में प्रत्येक रजकण भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी अवस्था में विद्यमान है। ऐसा वस्तुस्वभाव देखनेवाले को पर में कहीं भी एकत्वबुद्धि नहीं होती और पर्यायबुद्धि के राग-द्वेष नहीं होते।

आत्मा और प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय अपनी नयी अवस्थारूप उत्पन्न होता है, पुरानी अवस्थारूप से व्यय को प्राप्त होता है और अखण्ड वस्तुरूप से ध्रौव्य रहता है। प्रत्येक समय के परिणाम, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित हैं—ऐसे परिणाम, सो स्वभाव हैं और वस्तु, स्वभाववान है। स्वभाववान-द्रव्य अपने परिणामस्वभाव में स्थित है। कोई भी वस्तु अपना स्वभाव छोड़कर दूसरे के स्वभाव

में वर्ते अथवा तो दूसरे के स्वभाव को करे—ऐसा कभी नहीं होता। शरीर की जो अवस्थायें हैं, वे पुद्‌गल के परिणाम हैं, उनमें पुद्‌गल वर्तते हैं, आत्मा उनमें नहीं वर्तता; तथापि आत्मा उस शरीर की अवस्था में कुछ करता है—ऐसा जिसने माना, उसकी मान्यता मिथ्या है। जिस प्रकार अफीम की कड़वाहट आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणाम में अफीम ही विद्यमान है, उसमें कहीं गुड़ विद्यमान नहीं है और गुड़ के मिठास आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणाम में गुड़ ही विद्यमान है, उसमें कहीं अफीम विद्यमान नहीं है। उसी प्रकार आत्मा के ज्ञान आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणामस्वभाव में आत्मा विद्यमान है, उनमें कहीं इन्द्रियाँ या शरीरादि विद्यमान नहीं हैं; इसलिए उनसे आत्मा ज्ञात नहीं होता और पुद्‌गल के शरीर आदि के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपरिणामस्वभाव में पुद्‌गल ही विद्यमान है, उनमें कहीं आत्मा विद्यमान नहीं है; इसलिए आत्मा, शरीरादि की क्रिया नहीं करता। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में ही विद्यमान है। बस, ऐसे पदार्थ के स्वभाव को जानना, सो वीतरागी-विज्ञान है, उसी में धर्म आता है।

प्रत्येक पदार्थ की मर्यादा—सीमा अपने-अपने स्वभाव में रहने की है; अपने स्वभाव की सीमा से बाहर निकलकर पर में कुछ करे—ऐसी किसी पदार्थ की शक्ति नहीं है।—ऐसी वस्तुस्थिति हो, तभी प्रत्येक तत्त्व अपने स्वतन्त्र अस्तित्त्वरूप से रह सकता है। यही बात अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्त से कही जाये तो, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वचतुष्टय से (द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से) अस्तिरूप है, और पर के चतुष्टय से वह नास्तिरूप है। इस प्रकार

प्रत्येक तत्त्व भिन्न-भिन्न स्थित है—ऐसा निश्चित् करने से स्वतत्त्व को परतत्त्व से भिन्न जाना और अपने स्वभाव मे प्रवर्तमान स्वभाववान द्रव्य की दृष्टि हुई; यही सम्यक्रुचि, सम्यक्ज्ञान और वीतरागता का कारण है।

जैसी वस्तु हो, उसे वैसा ही जानना, सो सम्यग्ज्ञान है। जिस प्रकार लौकिक में गुड़ को गुड़ जाने और अफीम को अफीम जाने तो गुड़ और अफीम का सच्चा ज्ञान है, किन्तु यदि गुड़ को अफीम जाने या अफीम को गुड़ जाने तो वह मिथ्याज्ञान है। उसी प्रकार जगत के पदार्थों में जड़-चेतन प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव से स्थित है—ऐसा जानना, सो सम्यक्ज्ञान है और एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के कारण कुछ होता है—ऐसा माने तो वह मिथ्याज्ञान है; उसने पदार्थ के स्वभाव को जैसा है, वैसा नहीं जाना, किन्तु विपरीत माना है।

आत्मा का 'ज्ञायक' स्वभाव है और पदार्थों का 'ज्ञेय' स्वभाव है; पदार्थों में फेरफार -आगे-पीछे हो—ऐसा उनका स्वभाव नहीं है; और उनके स्वभाव में कुछ फेरफार करे —ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। जिस प्रकार आँख, अफीम को अफीमरूप से और गुड़ को गुड़रूप से देखती है; किन्तु अफीम को बदलकर गुड़ नहीं बनाती और गुड़ को बदलकर अफीम नहीं बनाती; और वह अफीम भी अपना स्वभाव छोड़कर गुड़रूप नहीं होती तथा गुड़ भी अपना स्वभाव छोड़कर अफीमरूप नहीं होता। उसी प्रकार आत्मा का ज्ञानस्वभाव समस्त स्व-पर ज्ञेयों को यथावत् जानता है, किन्तु उनमें कहीं कुछ भी फेरफार नहीं करता और ज्ञेय भी अपने स्वभाव को छोड़कर अन्यरूप नहीं होते। बस, ज्ञान और

ज्ञेय के ऐसे स्वभाव की प्रतीति, सो वीतरागी श्रद्धा है—ऐसा ज्ञान, सो वीतरागी-विज्ञान है।

स्वतन्त्र ज्ञेयों को यथावत् जानना, सो सम्यक्‌ज्ञान की क्रिया है। ज्ञान क्या कार्य करता है?—जानने का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त कहीं फेरफार करने का कार्य ज्ञान नहीं करता। प्रत्येक पदार्थ स्वयंसिद्ध सत् है, और उसमें पर्यायधर्म है; वे पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाली हैं; इसलिए पदार्थ में प्रतिसमय पर्याय के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं, उनमें वह पदार्थ वर्त रहा है। इस प्रकार स्वतन्त्रता को न जाने तो उसने द्रव्य की स्वतन्त्रता को भी नहीं जाना है, क्योंकि 'सत्' अपने परिणाम में वर्तता हुआ स्थित है। यदि वस्तु स्वयं स्थित रहने के लिए दूसरे के परिणाम का आश्रय माँगे, तो वह वस्तु ही 'सत्' नही रहती। 'सत्' का स्वभाव अपने ही परिणाम में प्रवर्तन करने का है। सत् स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। सत् के अपने परिणाम का उत्पाद यदि दूसरे से होता हो तो वह स्वयं 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्' ही नहीं रहता। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत् है—ऐसा मानते ही परिणाम की स्वतन्त्रता की स्वीकृति तो आ ही गयी और परिणाम, परिणाम में से नहीं, किन्तु परिणामी (द्रव्य) में से आते हैं, इसलिए उसकी दृष्टि परिणामी पर गयी, वह स्वद्रव्य के सन्मुख हुआ, स्वद्रव्य की सन्मुखता में सम्यक्‌श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति होती है, वह मोक्ष का कारण है।

प्रश्न : सोना और ताँबा—दोनों का मिश्रण होने पर तो वे एक-दूसरे में एकमेक हो गये हैं न?

उत्तर : भाई! वस्तुस्थिति को समझो। सोना और ताँबा कभी

एकमेक होते ही नहीं। संयोगदृष्टि से सोना और ताँबा एकमेक हुए—ऐसा कहा जाता है, किन्तु पदार्थ के स्वभाव की दृष्टि से तो सोना और ताँबा कभी एकमेक हुए ही नहीं हैं, क्योंकि जो सोने के रजकण हैं, वे अपने सुवर्ण-परिणाम में ही वर्तते हैं और जो ताँबे के रजकण हैं, वे अपने ताँबा-परिणाम में ही वर्तते हैं; एक रजकण दूसरे रजकण के परिणाम में नहीं वर्तता। सोने के दो रजकणों में से भी उसका एक रजकण दूसरे में नहीं वर्तता। यदि एक पदार्थ दूसरे में और दूसरा तीसरे में मिल जाये, तब तो जगत में कोई स्वतन्त्र वस्तु ही न रहे। सोना और ताँबा 'मिश्र हुआ' ऐसा कहने से भी उन दोनों की भिन्नता ही सिद्ध होती है, क्योंकि 'मिश्रण' दो का होता है, एक में 'मिश्रण' नहीं कहलाता; इसलिए मिश्रण कहते ही पदार्थों का भिन्न-भिन्न अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावरूप से सत् रहती है, दूसरा कोई विपरीत माने तो उससे कहीं वस्तु का स्वभाव बदल नहीं जाता। कोई अफीम को गुड़ माने तो उससे कहीं अफीम की कड़वाहट दूर नहीं हो जाएगी; अफीम को गुड़ मानकर खाये तो उसे कड़वाहट का ही अनुभव होगा। उसी प्रकार तत्त्व को जैसा का तैसा स्वतन्त्र न मानकर, पर के आधार से स्थित माने तो कहीं वस्तु तो पराधीन नहीं हो जाती, किन्तु उसने सत् को विपरीत माना; इसलिए उसका ज्ञान मिथ्या होता है; और उस मिथ्याज्ञान के फल में उसे चौरासी का अवतार होता है। कोई जीव पुण्य का शुभराग करके ऐसा माने कि मैं धर्म करता हूँ, तो कहीं उसे राग से धर्म नहीं होगा, किन्तु उसने वस्तुस्वरूप को विपरीत जाना है, इसलिए उस अज्ञान के फल में उसे चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

परिणाम, स्वभाव है और स्वभाववान, द्रव्य है—ऐसा जानकर स्वभाववान द्रव्य की रुचि होते ही सम्यक्त्व का उत्पाद, उसी समय मिथ्यात्व का व्यय और अखण्डरूप से आत्मा की ध्रुवता है।

प्रत्येक वस्तु 'सत्' है, 'सत्' त्रिकाल स्वयंसिद्ध है। यदि सत् त्रिकाली न हो तो वह असत् सिद्ध होगा। किन्तु वस्तु कभी असत् नहीं होती। वस्तु त्रिकाल है; इसलिए उसका कोई कर्ता नहीं है, क्योंकि त्रिकाली का रचयिता नहीं होता। यदि रचयिता कहो तो उससे पूर्व वस्तु नहीं थी—ऐसा सिद्ध होगा, अर्थात् वस्तु का नित्यपना नहीं रहेगा। वस्तु त्रिकाली सत् है और वह वस्तु, परिणामस्वभाववाली है; त्रिकाली द्रव्य ही अपने तीनों काल के वर्तमान-वर्तमान परिणामों की रचना करता है, वे परिणाम भी स्व-अवसर में सत् हैं, इसलिए उन परिणामों का रचयिता भी दूसरा कोई नहीं है। जिस प्रकार त्रिकाली द्रव्य का कर्ता कोई-ईश्वर आदि नहीं है, उसी प्रकार उस त्रिकाली द्रव्य के वर्तमान परिणाम का कर्ता भी कोई दूसरा (निमित्त, कर्म या जीव आदि) नहीं है। अपने प्रत्येक समय के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में स्थित रहता है, इसलिए द्रव्य सत् है। यदि द्रव्य दूसरे के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का अवलम्बन करे तो वह स्वयं सत् नहीं रह सकता। इसलिए जो जीव, द्रव्य को यथार्थतया 'सत्' जानता हो, वह द्रव्य का या द्रव्य की किसी पर्याय का कर्ता दूसरे को नहीं मानता; द्रव्य का या द्रव्य की किसी पर्याय का कर्ता दूसरे को माने, उस जीव ने वास्तव में 'सत्' को नहीं जाना है।

अहो! वस्तु के सत् स्वभाव को जाने बिना बाह्य क्रियकाण्ड के लक्ष्य से अनन्त काल बिता दिया, किन्तु वस्तु का स्वभाव सत्

है, उसे नहीं जाना; इसलिए जीव, संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

वस्तु, परिणाम में परिणमन करती है, वह परिणाम से पृथक् नहीं रहती। प्रत्येक समय के परिणाम के समय सम्पूर्ण वस्तु साथ में वर्त रही है—ऐसा जाने तो अपने को क्षणिक राग जितना न मानकर, उस समय सम्पूर्ण वस्तु रागरहित विद्यमान है—उसका विश्वास करे; इससे राग की रुचि का बल टूटकर सम्पूर्ण वस्तु पर रुचि का बल ढ़ला, अर्थात् सम्य्करुचि उत्पन्न हुई; राग और आत्मा का भेदज्ञान हुआ। मैं पर में नहीं वर्तता, मेरे परिणाम में परवस्तु नहीं वर्तती, किन्तु मैं अपने परिणाम में ही वर्तता हूँ; इस प्रकार परिणाम और परिणामी की स्वतन्त्रता जानने से रुचि पर में नहीं जाती, परिणाम पर भी नहीं रहती, किन्तु परिणामी द्रव्य में प्रविष्ट हो जाती है, अर्थात् सम्यक्रुचि होती है।

'वस्तु, परिणाम में वर्तती है।' बस! ऐसा निश्चित् करने में पर्यायबुद्धि दूर होकर वस्तुदृष्टि हो जाती है; उसी में वीतरागता विद्यमान है। मेरी भविष्य की केवलज्ञानपर्याय में भी यह द्रव्य ही वर्तेगा; इसलिए भविष्य की केवलज्ञानपर्याय को देखना नहीं रहा, किन्तु द्रव्यसन्मुख ही देखना रहा। द्रव्य की सन्मुखता में अल्प काल में केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

अहो! मैं अपने परिणामस्वभाव में हूँ; परिणाम, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है, उसी में आत्मद्रव्य वर्तता है—इस प्रकार स्ववस्तु की दृष्टि होने से पर से, लाभ-हानि मानने का मिथ्याभाव नहीं रहा, वहाँ सम्यग्ज्ञान पर्यायरूप से उत्पाद है, मिथ्याज्ञान पर्यायरूप से व्यय है और ज्ञान में अखण्ड परिणामरूप से ध्रौव्यता है। इस प्रकार इसमें धर्म आता है।

'परिणामी के परिणाम हैं'—ऐसा न मानकर जिसने पर के कारण परिणामों को माना, उसने परिणामी को दृष्टि में नहीं लिया, किन्तु अपने परिणाम को पर करता है—ऐसा माना; इसलिए स्व-पर को एक माना; इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है। परिणाम, परिणामी के हैं—इस प्रकार परिणाम और परिणामी की रुचि में स्वद्रव्य की सम्यक्रुचि उत्पन्न होकर मिथ्यारुचि का नाश हो जाता है।

देखो, यह वस्तुस्थिति का वर्णन है। जैनदर्शन कोई वाड़ा या कल्पना नहीं है, किन्तु वस्तुयें जिस स्वभाव से हैं, वैसी सर्वज्ञ भगवान ने देखी हैं, और वही जैनदर्शन में कही हैं। जैनदर्शन कहो या वस्तु का स्वभाव कहो। उसका ज्ञान कर तो तेरा ज्ञान सच्चा होगा और भव का परिभ्रमण दूर होगा। यदि वस्तु के स्वभाव को विपरीत मानेगा तो असत् वस्तु की मान्यता से तेरा ज्ञान मिथ्या होगा और परिभ्रमण का अन्त नहीं आयेगा, क्योंकि मिथ्यात्व ही सबसे महान पाप माना गया है; वही अनन्त संसार का मूल है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त परिणाम है, वह स्वभाव है और स्वभाव है, वह स्वभाववान के कारण है। इस प्रकार स्वभाव और स्वभाववान को दृष्टि में लेने से, पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को मैं करूँ या मेरे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को पर करे, यह बात नहीं रहती; इसलिए स्वयं अपने स्वभाववान की ओर उन्मुख होकर सम्यग्ज्ञान हो जाता है, उसी में धर्म आ गया। लोगों ने बाह्य में धर्म मान रखा है, किन्तु वस्तुस्थिति अन्तर की है। लोगों के माने हुए धर्म में और वस्तुस्थिति में पूर्व-पश्चिम दिशा जितना अन्तर है।

'वस्तु' उसे कहते हैं, जो अपने गुण-पर्याय में वास करे; अपने गुण-पर्याय से बाहर वस्तु कुछ नहीं करती और न वस्तु के

गुण-पर्याय को कोई दूसरा करता है। ऐसे भिन्न-भिन्न तत्त्वार्थ का श्रद्धान, सो सम्यग्दर्शन है। प्रथम सम्यग्दर्शन होता है, तत्पश्चात् श्रावक और मुनि के व्रतादि होते हैं। सम्यग्दर्शन के बिना व्रतादि माने, वह तो 'राख पर लीपन' मानना है। आत्मा की प्रतीति हुए बिना कहाँ रहकर व्रतादि करेगा?

जिस प्रकार गाड़ी के नीचे चलनेवाला कुत्ता मानता है कि— 'गाड़ी मेरे कारण चल रही है', किन्तु गाड़ी के परिणाम में उसका प्रत्येक परमाणु वर्त रहा है और कुत्ते के रागादि परिणाम में कुत्ता है; गाड़ी और कुत्ता—कोई एक-दूसरे के परिणाम में नहीं वर्तते, तथापि कुत्ता व्यर्थ मानता है कि 'मुझसे गाड़ी चल रही है।' उसी प्रकार परवस्तु के परिणाम स्वयं उसके अपने से होते हैं; उसे देखकर अज्ञानी जीव व्यर्थ ही ऐसा मानता है कि पर के परिणाम मुझसे होते हैं, किन्तु ऐसा नहीं होता। प्रत्येक तत्त्व के परिणाम सत् हैं, उसमें कोई दूसरा क्या करेगा? ऐसा स्वतन्त्र वस्तु का स्वभाव है, वही सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान में देखा है। कहीं भगवान ने देखा, इसलिए वस्तु का ऐसा स्वभाव है—ऐसा नहीं है, और ऐसा वस्तु का स्वभाव है, इसलिए भगवान को उसका ज्ञान हुआ - ऐसा भी नहीं है। ज्ञेय वस्तु का स्वभाव सत् है और ज्ञान भी सत् है। प्रथम ऐसे सत्स्वभाव को समझो! जो ऐसे स्वभाव को समझ ले, उसी ने वस्तु को वस्तुरूप से जाना है—ऐसा कहा जाये।

कर्म-परिणाम में पुद्गल वर्तते हैं और आत्मा के परिणाम में आत्मा वर्तता है; कोई एक-दूसरे के परिणाम में नहीं वर्तते; इसलिए कर्म, आत्मा को परिभ्रमण नहीं कराते। अपने स्वतन्त्र परिणाम को न जानकर, कर्म मुझे परिभ्रमण कराते हैं—ऐसा माना है, उस

विपरीत मान्यता से ही जीव भटक रहा है, किन्तु कर्मों ने उसे नहीं भटकाया। उस परिभ्रमण के परिणाम में आत्मा वर्त रहा है। प्रति समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होने का प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है—यह समझे तो परिणामी द्रव्य पर दृष्टि जाती है और द्रव्यदृष्टि में सम्यक्त्व और वीतरागता का उत्पाद होता है, यह धर्म है।

यदि द्रव्य के एक समय का सत् दूसरे से हो तो उस द्रव्य का वर्तमान सत्पना नहीं रहता; और वर्तमान सत् का नाश होने से त्रिकाली सत् का भी नाश हो जाता है अर्थात् वर्तमान परिणाम को स्वतन्त्र सत् माने बिना त्रिकाली द्रव्य का सत्पना सिद्ध नहीं होता; इसलिए द्रव्य का वर्तमान दूसरे (-निमित्त से) होता है—इस मान्यता में मिथ्यात्व होता है, उसमें सत् का स्वीकार नहीं आता। सत् का नाश नहीं होता, किन्तु जिसने सत् को विपरीत माना है, उसकी मान्यता में सत् का अभाव होता है। त्रिकाली सत् स्वतन्त्र, किसी के बनाये बिना है; और प्रत्येक समय का वर्तमान सत् भी स्वतन्त्र किसी के बनाये बिना है। ऐसे स्वतन्त्र सत् को विपरीत-पराधीन मानना, सो मिथ्यात्व है, वही महान अधर्म है। लोग काला बाजार आदि में तो अधर्म मानते हैं, किन्तु विपरीत मान्यता से सम्पूर्ण वस्तुस्वरूप का घात कर डालते हैं, उस विपरीत मान्यता के पाप की खबर नहीं है। मिथ्यात्व तो धर्म का महान काला बाजार है, उस काले बाजार से चौरासी के अवतार की जेल है। सत् को जैसे का तैसा माने तो मिथ्यात्वरूपी काले बाजार का महान पाप दूर हो जाये और सच्चा धर्म हो; इसलिए सर्वज्ञदेव कथित वस्तु स्वभाव को बराबर समझना चाहिए।

❀

अहो! वीतरागी तात्पर्य!!

प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभाव में रहता है, इसलिए वह 'सत्' है। वस्तु अपने परिणाम में वर्तमान रहती हो, तभी सत् रहे न? यदि वर्तमान परिणाम में न रहती हो तो वस्तु 'सत्' किस प्रकार रहे? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला परिणाम, वह वस्तु का स्वभाव है और उस वर्तमान परिणाम में वस्तु निरन्तर वर्त रही है, उससे वह सत् है।

आत्मा का क्षेत्र असंख्यप्रदेशी एक है और उस क्षेत्र का छोटे से छोटा अंश, सो प्रदेश है। उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य की प्रवाहधारा एक है और उस प्रवाहधारा का छोटे से छोटा अंश, सो परिणाम है।

❀ क्षेत्र अपेक्षा से द्रव्य का सूक्ष्म अंश, सो प्रदेश है।

❀ काल अपेक्षा से द्रव्य का सूक्ष्म अंश, सो परिणाम है।

यह तो ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि कराने के लिए वर्णन है। परिणाम, परिणामी में से आता है—ऐसे परिणामी द्रव्य की दृष्टि कर तो उस परिणामी के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रपरिणाम उत्पन्न हो, स्थिर रहे और बढ़कर पूर्ण हो।

प्रत्येक परिणाम अपने स्वकाल में उत्पन्न होता है, पूर्व परिणाम से व्ययरूप है और अखण्ड प्रवाह में वह ध्रौव्य है। केवलज्ञानपरिणाम अपने स्वरूप की अपेक्षा से स्वकाल में उत्पादरूप है, पूर्व की अल्पज्ञ पर्याय अपेक्षा से वह व्ययरूप है और द्रव्य के अखण्ड प्रवाह में तो वह केवलज्ञानपरिणाम ध्रौव्य है; इस प्रकार समस्त परिणाम अपने-अपने वर्तमान काल में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं, और उन-उन वर्तमान परिणामों में वस्तु वर्त रही है, अर्थात् वस्तु

वर्तमान में ही पूर्ण है। ऐसी वस्तु की दृष्टि कर तो उसके आश्रय से धर्म होता है। ज्ञानी, केवलज्ञानपर्याय के काल को नहीं ढूँढ़ते (उस पर दृष्टि नहीं रखते), क्योंकि वह पर्याय इस समय तो सत् नहीं है, किन्तु भविष्य में अपने स्वकाल में वह सत् है; इसलिए ज्ञानी तो वर्तमान में सत्—ऐसे ध्रुव द्रव्य को ही ढूँढ़ते हैं—(ध्रुव पर दृष्टि रखते हैं।) इस अपेक्षा से नियमसार में उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक—इन चारों भावों को विभावभाव कहा है। जो पर्याय वर्तमान उत्पादरूप से वर्तती है, वह तो अंश है; केवलज्ञान पर्याय भी अंश है; वह वर्तमान प्रगट नहीं है और भविष्य में प्रगट होगी—इस प्रकार परिणाम के काल पर देखते नहीं रहना, किन्तु वर्तमान परिणाम के समय ध्रुवरूप से सम्पूर्ण द्रव्य वर्त रहा है, उस द्रव्य की प्रतीति करना इसमें आता है; द्रव्य की दृष्टि होने में वीतरागता होती है। शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है; वीतरागता को तात्पर्य कहने से स्वभाव की दृष्टि करने का ही तात्पर्य है—ऐसा आया, क्योंकि वीतरागता तो स्वभाव की दृष्टि से होती है। अन्तर में द्रव्यस्वभाव पर लक्ष्य रहने से वीतरागता हो जाती है; इससे ध्रुव द्रव्यस्वभाव की दृष्टि ही कार्यकारी हुई। पर्याय को ढूँढ़ना नहीं रहा, अर्थात् पर्याय की दृष्टि नहीं रही। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि रखकर पर्याय का ज्ञाता रहा, उसमें वीतरागता होती जाती है।

वीतरागता ही तात्पर्य है, किन्तु वह वीतरागता कैसे हो? वीतरागपर्याय को शोधने से (उस पर्याय के सन्मुख देखने से) वीतरागता नहीं होती, किन्तु ध्रुवतत्त्व के आश्रय में रहने से पर्याय में वीतरागतारूप तात्पर्य हो जाता है। इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि होने में ही तात्पर्य आ जाता है। इसलिए शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता

है—ऐसा कहो या शास्त्र का तात्पर्य स्वभावदृष्टि है—ऐसा कहो, दोनों एक ही हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है कि—

'जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहि कांई;
लक्ष थवाने तेहनो कह्यां शास्त्र सुखदाई।'

जैसा भगवान का आत्मा, वैसा ही अपना आत्मा; उसके स्वभाव में कोई भेद नहीं है। ऐसे स्वभाव का लक्ष्य करना ही शास्त्रों का सार है।

यहाँ परिणामों के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की बात चल रही है, उसमें से वीतरागी तात्पर्य किस प्रकार निकलता है, वह बतलाया है। परिणामों की ध्रौव्यता तो अखण्ड प्रवाह अपेक्षा से है। अब, परिणामों का प्रवाहक्रम एकसाथ तो वर्तता नहीं हैं, इसलिए परिणामों की ध्रौव्यता निश्चित करते हुए ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि जाती है। ध्रुवस्वभाव की दृष्टि बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित नहीं हो सकते। परिणाम को ध्रौव्य कब कहा?—परिणामों के सम्पूर्ण प्रवाह की अपेक्षा से उसे ध्रौव्य कहा है; सम्पूर्ण प्रवाह एक समय में प्रगट नहीं हो जाता, इसलिए परिणाम की ध्रौव्यता निश्चित करनेवाले की दृष्टि एक-एक परिणाम के ऊपर से हटकर ध्रुव द्रव्य पर गयी। परिणाम के ऊपर की दृष्टि से (पर्यायदृष्टि से) परिणाम की ध्रौव्यता निश्चित नहीं होती। परिणामों का अखण्ड प्रवाह कहीं एक ही परिणाम में तो नहीं है, इसलिए अखण्ड की—त्रिकाली ध्रौव्य की—ध्रुव-स्वभाव की दृष्टि हुए बिना परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी ख्याल में नहीं आ सकते।

वस्तु एक समय में पूर्ण है; उसके परिणाम में उत्पाद-व्यय-

ध्रौव्यपना है। वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपना निश्चित करने से द्रव्य पर ही दृष्टि जाती है। वर्तमान परिणाम से उत्पाद है, पूर्व परिणाम से व्यय है और अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से ध्रौव्य है; इसलिए अखण्ड प्रवाह की दृष्टि में ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि गयी और तभी परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य निश्चित हुए।

इसमें पुरुषार्थ कहाँ काम करता है ?—ऐसा निश्चित किया वहाँ पुरुषार्थ द्रव्यसन्मुख ही कार्य करने लगा और वीतरागता ही होने लगी। परिणाम अपने स्वकाल में होते हैं, वे तो होते ही रहते हैं; किन्तु वैसा निश्चित करनेवाले की दृष्टि ध्रुव पर पड़ी है। ध्रौव्य-दृष्टि हुए बिना यह बात नहीं जम सकती।

इस ज्ञेय-अधिकार में मात्र पर-प्रकाशक की बात नहीं है, परन्तु स्वसन्मुख स्व-प्रकाशकपने सहित पर-प्रकाशक की बात है। जहाँ अपने ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता में स्व-प्रकाशक हुआ, वहाँ सम्पूर्ण जगत के समस्त पदार्थ भी ऐसे ही हैं—ऐसा पर-प्रकाशकपना ज्ञान में विकसित हो ही जाता है। द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कब निश्चित होते हैं ? ज्ञायक चैतन्यद्रव्य की रुचि तथा उस ओर उन्मुखता होने से सब निश्चित हो जाता है। जिस प्रकार स्व के ज्ञानसहित ही पर का सच्चा ज्ञान होता है; उसी प्रकार ध्रुव की दृष्टि से ही उत्पाद-व्यय का सच्चा ज्ञान होता है।

वस्तुस्वरूप ऐसा है कि कहीं पर के ऊपर तो देखना नहीं है; और मात्र अपनी पर्यायसन्मुख भी देखना नहीं है; विकल्प को दूर करके निर्विकल्पता करूँ—ऐसे लक्ष्य में निर्विकल्पता नहीं होती, किन्तु ध्रुव के लक्ष्य से निर्विकल्पता हो जाती है; इसलिए पर्याय

के उत्पाद-व्यय के सन्मुख भी देखना नहीं है। पर्यायों के प्रवाहक्रम में द्रव्य वर्त रहा है। किस पर्याय के समय सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है ?— जब देखो तब द्रव्य वर्तमान में परिपूर्ण है; ऐसे द्रव्य की सन्मुखता होने से प्रवाहक्रम निश्चित होता है। फिर उस प्रवाह का क्रम बदलने की बुद्धि नहीं रहती, किन्तु ज्ञातापने का अभिप्राय रहता है। वहाँ वह प्रवाहक्रम ऐसे का ऐसा रह जाता है और द्रव्यदृष्टि हो जाती है। उस द्रव्यदृष्टि में क्रमशः वीतरागी परिणामों का ही प्रवाह निकलता रहेगा। ऐसा इस ९९ वीं गाथा का सार है।

अहो! अपार वस्तु है; केवलज्ञान का कोठार भरा है। इसमें से जितना रहस्य निकालो, उतना निकल सकता है। भीतर दृष्टि करे तो पार आ सकता है।

अहो! आचार्य भगवान ने अमृत ने ढक्कन खोल दिये हैं— अमृत का प्रवाह बहा दिया है।

(1) सामान्य में से विशेष होता है—ऐसा कहो,

(2) वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है—ऐसा कहो, अथवा

(3) द्रव्य में से क्रमबद्धपर्याय की प्रवाहधारा बहती है, ऐसा कहो; इसका निर्णय करने में ध्रुवस्वभाव पर ही दृष्टि जाती है। ध्रुवस्वभाव की रुचि में ही सम्यक्त्व और वीतरागता होती है। यह तो अन्तरंग रुचि की और अन्तर्दृष्टि की वस्तु है, मात्र शास्त्र की, पण्डिताई की यह वस्तु नहीं है।

यह वस्तु के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की सूक्ष्म बात है। कुम्हार, घड़ा नहीं बनाता और कर्म, जीव को विकार नहीं कराते—यह तो ठीक, किन्तु यह तो उससे भी सूक्ष्म

बात है। सर्वज्ञता में ज्ञाता हुआ वस्तुस्वभाव का एकदम सूक्ष्म नियम यहाँ बतला दिया है। मिट्टी स्वयं पिण्डदशा का नाश होकर घटपर्यायरूप उत्पन्न होती है और मिट्टीपने के प्रवाह की अपेक्षा वह ध्रौव्य है; उसी प्रकार समस्त पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाववाले हैं।—ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव समझने से अपने को पर-सन्मुख देखना नहीं रहता, क्योंकि पर के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को स्वयं नहीं करता और अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर से नहीं होते; इसलिए अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के लिए कहीं परसन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना ही रहता है। अब, स्वयं अपने परिणामों को देखते हुए ज्ञान अन्तर में परिणामी स्वभाव की ओर उन्मुख होता है, और उस परिणामी के आधार से वीतरागी परिणाम का प्रवाह निकलता रहता है। इस प्रकार ध्रुव के आश्रय से वीतरागी परिणाम का प्रवाह निकलता रहता है।—उसकी यह बात है।

'आत्मा दूसरे का कुछ नहीं कर सकता।'—ऐसा कहते ही अन्य किसी के सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु स्वसन्मुख देखना आता है। अपने में अपने परिणाम अपने से होते हैं—ऐसा निश्चित करने पर, अन्तर में जहाँ से परिणाम की धारा बहती है—ऐसे ध्रुवद्रव्य-सन्मुख देखना रहा और ध्रुव-सन्मुख देखते ही (ध्रुवस्वभाव की दृष्टि होते ही) सम्यक्पर्याय का उत्पाद होता है। यदि ध्रुव-सन्मुख न देखे तो पर्यायदृष्टि में मिथ्यापर्याय का उत्पाद होता है। इसलिए वस्तु के ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव को समझने से ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से सम्यक् वीतराग पर्यायों का उत्पाद हो—यही सर्व कथन का तात्पर्य है।

प्रवचनसार, गाथा-१००

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्पराविनाभावं दृढयति -

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।।१००।।

न भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनः।
उत्पादोऽपि च भङ्गो न विना ध्रौव्येणार्थेन।।१००।।

न खलु सर्गः संहारमन्तरेण, न संहारो वा सर्गमन्तरेण, न सृष्टिसंहारौ स्थितिमन्तरेण, न स्थितिः सर्गसंहारमन्तरेण। य एव हि सर्गः स एव संहारः, य एव संहारः स एव सर्गः, यावेव सर्गसंहारौ सैव स्थितिः, यैव स्थितिस्तावेव सर्गसंहाराविति।तथा हि - य एव कुम्भस्य सर्गः स एव मृत्पिण्डस्य संहारः, भावस्य भावान्तराभावस्वभावेनावभासनात्। य एव च मृत्पिण्डस्य संहारः स एव कुम्भस्य सर्गः, अभावस्य भावान्तरभाव-स्वभावेनावभासनात्। यौ च कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ सैव मृत्तिकायाः स्थितिः, व्यतिरेकाणामन्वयानतिक्रमणात्। यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ, *व्यतिरेकमुखेनैवान्वयस्य प्रकाशनात्। यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ, व्यतिरेकाणामन्वयानति-क्रमणात्। यदि पुनर्नेदमेवमिष्येत तदान्यः सर्गोऽन्यः संहारः अन्या स्थितिरित्यायाति। तथा सति हि केवलं सर्गं मृगयमाणस्य कुम्भस्योत्पादन-कारणाभावादभवनिरेव भवेत्, असदुत्पाद एव वा। तत्र कुम्भास्याभवनौ सर्वेषांमेव भावानामभवनिरेव भवेत्; असदुत्पादे वा व्योमप्रसवादीनामप्युत्पादः स्यात्। तथा केवलं संहारमारभमाणस्य मृत्पिण्डस्य संहारकारणाभावाद-संहरणिरेव भवेत्, सदुच्छेद एव वा। तत्र मृत्पिण्डस्यासंहरणौ सर्वेषामेव भावानामसंहरणिरेव भवेत्; सदुच्छेदे वा संविदादीनामप्युच्छेदः स्यात्। तथा केवलां स्थितिमुपगच्छन्त्या मुत्तिकाया व्यतिरेका-क्रान्तस्थित्यन्वयाभावादस्थानिरेव भवेत्, क्षणिक-नित्यत्वमेव वा। तत्र मृत्तिकाया अस्थानौ सर्वेषामेव

भावानाम-स्थानिरेव भवेत्; क्षणिकनित्यत्वे वा चित्तक्षणानामपि नित्यत्वं स्यात्। तत उत्तरोत्तरव्यतिरेकाणां सर्गेण पूर्वपूर्वव्यतिरेकाणां संहारेणान्वयस्यावस्थानेनाविनाभूतमुद्योतमाननिर्विघ्नत्रैलक्षण्यलाञ्छनं द्रव्यमवश्यमनुमन्तव्यम्।।१००।।

अब, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का परस्पर अविनाभाव[1] दृढ़ करते हैं –

उत्पाद है नहीं भंगबिन, नहीं भंग, बिन उत्पाद के।
उत्पाद-भंग वर्ते नहीं, बिना ध्रौव्य पदार्थ के ॥

अन्वयार्थ : [**भवः**] उत्पाद [**भङ्गविहीनः**] भंग[2] रहित [**न**] नहीं होता, [**वा**] और [**भङ्गः**] भंग [**संभवविहीनः**] बिना उत्पाद के [**नास्ति**] नहीं होता; [**उत्पादः**] उत्पाद [**अपि च**] तथा [**भङ्गः**] भंग [**ध्रौव्येण अर्थेन विना**] ध्रौव्य पदार्थ के बिना [**न**] नहीं होते।

टीका : वास्तव में सर्ग[3] संहार[4] के बिना नहीं होता और संहार सर्ग के बिना नहीं होता; सृष्टि[5] और संहार स्थिति[6] (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते, स्थिति सर्ग और संहार के बिना नहीं होती।

जो सर्ग है, वही संहार है; जो संहार है, वही सर्ग है; जो सर्ग और संहार है, वही स्थिति है; जो स्थिति है, वही सर्ग और संहार है। वह इस प्रकार – जो कुम्भ का सर्ग है, वही मृत्तिकापिण्ड[7] का

1. अविनाभाव = एक के बिना दूसरे का नहीं होना वह; एक-दूसरे बिना हो ही नहीं सके ऐसा भाव।
2. भंग = व्यय; नाश।
3. सर्ग = उत्पाद, उत्पत्ति।
4. संहार = व्यय, नाश।
5. सृष्टि = उत्पत्ति।
6. स्थिति = स्थित रहना; ध्रुव रहना; ध्रौव्य।
7. मृत्तिकापिण्ड = मिट्टी का पिण्ड।

संहार है, क्योंकि भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से अवभासन है। (अर्थात् भाव अन्यभाव के अभावरूप स्वभाव से प्रकाशित है – दिखाई देता है।) और जो मृत्तिकापिण्ड का संहार है, वही कुम्भ का सर्ग है, क्योंकि अभाव का भावान्तर के भावस्वभाव से अवभासन है; (अर्थात् नाश अन्यभाव के उत्पादरूप स्वभाव से प्रकाशित है।)

और जो कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, वही मृत्तिका की स्थिति है, क्योंकि व्यतिरेक[1] अन्वय का अतिक्रमण (उल्लंघन) नहीं करते, और जो मृत्तिका की स्थिति है वही कुम्भ का सर्ग और पिण्ड का संहार है, क्योंकि व्यतिरेकों के द्वारा ही अन्वय[2] प्रकाशित होता है। और यदि ऐसा ही (ऊपर समझाया तदनुसार) न माना जाय तो ऐसा सिद्ध होगा कि 'सर्ग अन्य है, संहार अन्य है, स्थिति अन्य है।' (अर्थात् तीनों पृथक् हैं – ऐसा मानने का प्रसङ्ग आ जायेगा।) ऐसा होने पर (क्या दोष आता है, तो समझाते हैं) :-

केवल सर्ग-शोधक कुम्भ की (-व्यय और ध्रौव्य से भिन्न मात्र उत्पाद करने को जानेवाले कुम्भ की) उत्पादन[3] कारण का अभाव होने से उत्पत्ति ही नहीं होगी; अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। और वहाँ, (1) यदि कुम्भ की उत्पत्ति न होगी तो समस्त ही भावों की उत्पत्ति ही नहीं होगी। (अर्थात् जैसे कुम्भ की उत्पत्ति नहीं होगी, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी

1. व्यतिरेक = भेद; एक का दूसरेरूप न होना वह; 'यह वह नहीं है' ऐसे ज्ञान का निमित्तभूत भिन्नरूपत्व।
2. अन्वय = एकरूपता; सादृश्यता; 'यह वही है' ऐसे ज्ञान का कारणभूत एकरूपत्व।
3. उत्पादनकारण = उत्पत्ति का कारण।

भी भाव का उत्पाद ही नहीं होगा – यह दोष आयेगा); अथवा (2) यदि असत् का उत्पाद हो तो व्योम-पुष्प[1] इत्यादि का भी उत्पाद होगा, (अर्थात् शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे – यह दोष आएगा।)

और केवल व्ययारम्भक (उत्पाद और ध्रौव्य से रहित केवल व्यय करने को उद्यत मृत्तिकापिण्ड का) संहारकारण का अभाव होने से संहार ही नहीं होगा; अथवा तो सत् का ही उच्छेद होगा। वहाँ, (1) यदि मृत्तिकापिण्ड का व्यय न होगा तो समस्त ही भावों का संहार ही न होगा, (अर्थात् जैसे मृत्तिकापिण्ड का संहार नहीं होगा, उसी प्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भाव का संहार ही नहीं होगा – यह दोष आयेगा); अथवा (2) यदि सत् का उच्छेद होगा तो चैतन्य इत्यादि का भी उच्छेद हो जाएगा, (अर्थात् समस्त द्रव्यों का सम्पूर्ण विनाश हो जाएगा – यह दोष आयेगा।)

और केवल[2] स्थिति प्राप्त करने को जानेवाली मृत्तिका की, व्यतिरेकों सहित स्थिति का-अन्वय का – उसके अभाव होने से, स्थिति ही नहीं होगी; अथवा तो क्षणिक को ही नित्यत्व आ जाएगा। वहा (1) यदि मृत्तिका की स्थिति न हो तो समस्त ही भावों की स्थिति नहीं होगी, (अर्थात् यदि मिट्टी ध्रुव न रहे तो

---

1. व्योमपुष्प = आकाश के फूल।
2. केवल स्थिति = (उत्पाद और व्यय रहित) अकेला ध्रुवपना, केवल स्थितिपना; अकेला अवस्थान। [अन्वय व्यतिरेकों सहित ही होता है, इसलिए ध्रौव्य उत्पाद-व्ययसहित ही होगा, अकेला नहीं हो सकता। जैसे, उत्पाद (या व्यय) द्रव्य का अंश है – समग्र द्रव्य नहीं, इस प्रकार ध्रौव्य भी द्रव्य का अंश है – समग्र द्रव्य नहीं।

मिट्टी की ही भाँति विश्व का कोई भी द्रव्य ध्रुव ही नहीं रहेगा - टिकेगा ही नहीं, यह दोष आयेगा।) अथवा (2) यदि क्षणिक का नित्यत्व हो तो चित्त के क्षणिक-भावों का भी नित्यत्व होगा; (अर्थात् मन का प्रत्येक विकल्प भी त्रैकालिक ध्रुव हो जाय - यह दोष आयेगा।)

इसलिए द्रव्य को उत्तर उत्तर[1] व्यतिरेकों के सर्ग के साथ, पूर्व पूर्व के व्यतिरेकों के संहार के साथ और अन्वय के अवस्थान (ध्रौव्य) के साथ अविनाभाववाला, जिसको निर्विघ्न (अबाधित) त्रिलक्षणतारूप लांछन[2] प्रकाशमान है - ऐसा अवश्य सम्मत करना ॥100 ॥

1. उत्तर उत्तर = बाद बाद के।
2. लांछन = चिह्न।

गाथा 100 पर प्रवचन

उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव

99वीं गाथा में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वभाव को अलौकिक रीति से सिद्ध किया। अब, वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक-दूसरे के बिना नहीं होते, किन्तु तीनों एक ही साथ होते हैं - इस बात को 100वीं गाथा में दृढ़ करते हैं।

ण भवो भंगविहीणो, भंगो वा णत्थि संभवविहीणो,
उप्पादो वि य भंगो, ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥100॥

उत्पाद भंग बिना नहिं, संहार सर्ग विना नहिं,
'उत्पाद तेम ज भंग, ध्रौव्य-पदार्थ विण वर्ते नहि ॥100॥

उत्पाद भंग के बिना नहीं होता, भंग उत्पाद बिना नहीं होता और उत्पाद तथा भंग - यह दोनों ध्रुव पदार्थ के बिना नहीं होते। वस्तु के समय-समय के परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रुव की यह बात है। आत्मा में सम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं होता, मिथ्यात्व का नाश सम्यक्त्व के उत्पाद के बिना नहीं होता और सम्यक्त्व का उत्पाद तथा मिथ्यात्व का व्यय - यह दोनों, आत्मा की ध्रुवता के बिना नहीं होते। आत्मवस्तु में सम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय और अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से आत्मा की ध्रुवता है, इस प्रकार प्रत्येक वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव— तीनों साथ ही होते हैं।

आत्मा में सच्ची समझ का उत्पाद ही और भ्रमणा का व्यय न हो - ऐसा नहीं होता। स्वभाव की यथार्थ समझ इस समय हो और

भ्रम फिर कभी दूर हो – ऐसा नहीं होता। स्वभाव की रुचि हो और पर की रुचि न टले – ऐसा नहीं हो सकता। मिथ्यात्व का व्यय हुए बिना सम्यक्त्व का उत्पाद नहीं होता। संसारदशा का नाश हुए बिना सिद्धदशा का उत्पाद नहीं होता। सिद्धदशा का उत्पाद-संसारदशा के व्ययरूप है। स्वभाव की रुचि का उत्पाद होने से पुण्य-पाप की रुचि का व्यय होता है, इसलिए जो सम्यक्रुचि का उत्पाद है और मिथ्यारुचि का व्यय है और समस्त परिणामों के समय द्रव्य -अपेक्षा से ध्रुवता है। इस प्रकार वस्तु में प्रति समय उत्पाद -व्यय-ध्रुव एकसाथ ही होते हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक दूसरे के बिना नहीं होते।

द्रव्य के जिन परिणामों में सम्यक्त्व का उत्पाद है, उन्हीं में मिथ्यात्व का व्यय है। सम्यक्-श्रद्धारूप से द्रव्य का जो उत्पाद है, वही मिथ्यात्वरूप से विनाश है; इस प्रकार जो उत्पाद है, वही व्यय है। जिस समय जो परिणाम उत्पादरूप है, उस समय तो वह उत्पादरूप ही है, वह स्वयं कहीं व्ययरूप नहीं है, किन्तु पूर्व परिणामों की अपेक्षा से वह व्ययरूप है। एक ही अपेक्षा से एक परिणाम में उत्पाद-व्यय नहीं कहलाते। वर्तमान परिणाम की अपेक्षा से द्रव्य का जो उत्पाद है, वही पूर्ण परिणाम की अपेक्षा से उसका व्यय है और द्रव्यपने की अपेक्षा से वह द्रव्य ध्रुव है – इस प्रकार, द्रव्य के उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों भिन्न-भिन्न नहीं हैं किन्तु अविनाभावी हैं।

यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों का अविनाभावीपना कहकर द्रव्य अपेक्षा से एकता बतलाते हैं और 102वीं गाथा में उत्पाद -व्यय-ध्रुव का समय भेद नहीं है – ऐसा कहकर काल अपेक्षा से

उनकी एकता बतलायेंगे। यहाँ कहते हैं कि जो उत्पाद है, वही व्यय है और जो उत्पाद-व्यय है, वही स्थिति है। गाथा 102 में कहेंगे कि जिस क्षण उत्तर पर्याय का उत्पाद है, उसी क्षण पूर्व पर्याय का व्यय है और उसी क्षण द्रव्यपने की ध्रुवता है।

परिणाम परिणामी के हैं। परिणामी को देखे बिना परिणाम को नहीं देखा जाता। परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को देखनेवाले की दृष्टि परिणामी द्रव्य पर जाती है और द्रव्यदृष्टि में वीतरागी तात्पर्य सिद्ध हो जाता है।

प्रत्येक पदार्थ सत् है, वह पदार्थ स्वयं अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव को करता है, दूसरा कोई पदार्थ उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव को नहीं करता। कुम्हार घड़े की उत्पत्ति करे, यह तो बात ही नहीं है, क्योंकि घड़ा मिट्टी का उत्पाद है, उसमें मिट्टी वर्तती है, कहीं कुम्हार उसमें नहीं वर्तता, कुम्हार का उत्पाद-व्यय-ध्रुव कुम्हार में है और घड़ा आदि का उत्पाद-व्यय-ध्रुव मिट्टी में है। घड़े की रचनारूप से कौन उत्पन्न हुआ? मिट्टी या कुम्हार? घड़े की रचनारूप मिट्टी ही उत्पन्न हुई है, कुम्हार कहीं घड़े की रचनारूप उत्पन्न नहीं हुआ। 'कुम्हार न हो तो घड़ा नहीं हो सकता' - इस प्रकार यहाँ कुम्हार और घड़े का अविनाभावीपना नहीं लिया है, क्योंकि वह दोनों तो स्वतन्त्र सत् हैं। यहाँ तो, मिट्टी में घड़े की उत्पत्ति पिण्ड के व्यय बिना नहीं होती - ऐसा कहकर सत् में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभावीपना बतलाते हैं। इस प्रकार जगत के समस्त सत् पदार्थों में अपने उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक-दूसरे के बिना नहीं होते, परन्तु पर के साथ उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह तो समय-समय के उत्पाद-व्यय-ध्रुव की सूक्ष्म बात है। वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव को समझने से अपने को परसन्मुख देखना नहीं रहता, स्वयं अपने परिणाम को देखने से ज्ञान अन्तर में परिणामी स्वभाव की ओर उन्मुख होता है, और उस परिणामी ध्रुव द्रव्य के आश्रय से वीतरागी परिणामों का प्रवाह चलता रहता है।

प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही सत् है, इसलिए अपने स्वभाव से ही वह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है - ऐसा निश्चित किया, वहाँ एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में कुछ नहीं कर सकता - यह बात भी आ गयी। आत्मा दूसरे का कुछ नहीं कर सकता - ऐसा समझते ही दूसरे के सन्मुख देखना नहीं रहता, किन्तु अपने द्रव्यसन्मुख देखना आता है। परसन्मुख देखकर 'मैं पर का नहीं कर सकता' - ऐसा यथार्थ नहीं माना जा सकता, किन्तु पर की सन्मुखता से हटकर अपनी ओर ढले, तभी 'पर का मैं नहीं कर सकता' - ऐसा वास्तव में माना कहलाता है। 'पर का मैं नहीं कर सकता और मेरे परिणामों को पर नहीं करता, तो मेरे परिणामों को कौन करता है ? कहाँ से परिणाम आते हैं ? ऐसा निश्चित करने से अन्तर में जहाँ से परिणाम आते हैं, ऐसे ध्रुव सन्मुख देखना रहा। इसलिए, अपने परिणाम अपने से ही होते हैं - ऐसा माननेवाले की दृष्टि ध्रुवद्रव्य पर पड़ी है। ध्रुव सन्मुख देखते ही सम्यक्पर्याय का उत्पाद होता है और वह उत्पाद मिथ्यात्वपर्याय के व्यय-स्वरूप है। यदि ध्रुवसन्मुख न देखे तो मिथ्या पर्याय का उत्पाद होता है। वस्तुस्वभाव समझने से ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से सम्यक् वीतरागी पर्यायों का उत्पाद हो, वही तात्पर्य है।

प्रत्येक पदार्थ प्रति समय उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है। यदि उन उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को एक ही साथ न माने तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होती। वस्तु के अपने उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक-दूसरे के बिना नहीं होते, किन्तु परवस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव के साथ उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा समझे तो पर के साथ के कर्तृत्व की मान्यता छूट जाए और अपने प्रति समय के परिणामों की स्वतन्त्रता माने और प्रति समय के परिणाम, परिणामी द्रव्य में से आते हैं; इसलिए परिणामी द्रव्य पर दृष्टि जाने से सम्यक्त्व का उत्पाद तथा मिथ्यात्व का व्यय हो जाता है, वह धर्म है। इस प्रकार धर्म की यह बात चल रही है।

- उत्पाद, व्यय के बिना नहीं होता,
- व्यय, उत्पाद के बिना नहीं होता,
- उत्पाद और व्यय, ध्रुव के बिना नहीं होते
- ध्रुव, उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता,
- जो उत्पाद है, वही व्यय है,
- जो व्यय है, वही उत्पाद है,
- जो उत्पाद और व्यय है, वही ध्रुव है
- जो ध्रुव है, वही उत्पाद और व्यय है।

—इस प्रकार वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रुव - तीनों एक साथ ही होते हैं। किस प्रकार? वह बतलाने के लिये यहाँ मिट्टी का दृष्टान्त देते हैं।

मिट्टी में जो घड़े का उत्पाद है, वही पूर्व की पिण्डदशा का

व्यय है; जो पिण्ड का व्यय है, वही घड़े का उत्पाद है; जो घड़े का उत्पाद और पिण्ड का व्यय है, वही मिट्टी की ध्रुवता है और जो मिट्टी की ध्रुवता है, वही घड़े का उत्पाद और पिण्ड का व्यय है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय और ध्रुव एक साथ ही वर्त रहे हैं।

यहाँ आचार्यदेव यह बात विस्तार से समझाते हैं।

1. जो उत्पाद है, वही व्यय है

मिट्टी में घट अवस्था का जो उत्पाद है, वही पिण्ड अवस्था का व्यय है, क्योंकि भाव का भावान्तर के अभावस्वभाव से अवभासन है। भाव का अर्थात् वर्तमान उत्पाद का भावान्तर के अर्थात् पूर्व पर्याय के अभावस्वभाव से अर्थात् व्ययरूप से अवभासन होता है-ज्ञात होता है। एक भाव की उत्पत्ति हुई, वह उसमें पूर्व के भाव का नाश होकर होती है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि वर्तमान पर्याय का उत्पाद उस वर्तमान पर्याय के ही व्ययरूप नहीं है, किन्तु वर्तमान पर्याय का उत्पाद, उस पूर्व पर्याय के व्ययरूप है। मोक्षभाव का उत्पाद हुआ, वह संसारभाव के अभावस्वरूप है। सम्यग्ज्ञानरूप भाव प्रगट हुआ, वह अज्ञानभाव के अभावस्वरूप है, ज्ञान पर्याय का उत्पाद हो और उसमें पूर्व की अज्ञान पर्याय भी रहे - ऐसा कभी नहीं बनता। प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है।

इस प्रकार प्रत्येक समय के प्रत्येक परिणाम के उत्पाद-व्यय-ध्रुव की स्वतन्त्रता को समझे तो, समय-समय के परिणाम

के उत्पाद-व्यय-ध्रुव का आधार जो द्रव्य है, उस द्रव्य पर रुचि जाती है, उसकी यह बात है।

कोई मनुष्य ऐसा कहे कि 'अमुक मनुष्य पहले मेरा कहना नहीं मानता था और अब मानता है।' तो वहाँ उस मनुष्य में मानने की पर्याय का भाव हुआ, उसमें 'न मानने के भाव' का अभाव हुआ और मनुष्यरूप से वह ध्रुव रहा। इस प्रकार वस्तु में उत्पाद -व्यय-ध्रौव्य तीनों एक-दूसरे के साथ ही होते हैं।

एक पदार्थ के उत्पाद-व्यय के कारण दूसरे पदार्थ की पर्याय के उत्पाद-व्यय होते हैं - ऐसा नहीं है। पुद्गल में मिथ्यात्वकर्म का व्यय हुआ, इसलिए यहाँ जीव की पर्याय में मिथ्यात्व दूर हुआ - ऐसा नहीं है। किन्तु अपनी पर्याय में सम्यक्त्व का उत्पाद मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं होता। एक साथ दो अवस्थाएँ नहीं रहतीं किन्तु दूसरी अवस्था होने पर पहली अवस्था का अभाव हो जाता है। सिद्ध पर्याय हो और संसार पर्याय भी रहे, ऐसा नहीं हो सकता, किन्तु सिद्ध पर्याय होने से संसार पर्याय का उसी क्षण नाश हो जाता है। वीतराग पर्याय हो और राग पर्याय भी बनी रहे, ऐसा कभी नहीं हो सकता; वीतराग पर्याय में राग पर्याय का अभाव है।

कोई कहे कि - 'कुछ राग और कुछ वीतरागता' - ऐसा तो साधक के होता है ? उसका समाधान - वहाँ उत्पादरूप पर्याय एक ही है और उस पर्याय में पूर्व की पर्याय का अभाव है। अकेली राग पर्याय को लिया जावे तो उस राग पर्याय में भी इससे पूर्व के राग का तो अभाव ही है। जो नवीन पर्याय उत्पन्न हुई, वह पूर्व

पर्याय का व्यय होकर हुई है, यानि वर्तमान पर्याय का उत्पाद पूर्व पर्याय के व्ययस्वरूप है।

स्वभाव की रुचि उत्पन्न होने से विभाव की रुचि दूर हो ही जाती है। इस प्रकार दूसरे भाव का उत्पाद, पहले भाव के व्यय बिना नहीं होता। स्वभाव की सम्यक्रुचि के उत्पाद के समय उसके साथ विकार की रुचि का उत्पाद भी साथ में नहीं हो सकता। रुचि तो सम्यक्त्व गुण की पर्याय है और आसक्ति का राग तो चारित्रगुण की पर्याय है, इस प्रकार गुणभेद है और प्रत्येक गुण का उत्पाद स्वतन्त्र है, इसलिए परिणाम के उत्पाद में स्वभाव की रुचि और आसक्ति का राग – यह दोनों तो साधक को एक साथ हो सकते हैं, किन्तु सम्यक्रुचि और मिथ्यारुचि – ऐसी एक ही गुण की दो पर्यायें एक साथ उत्पादरूप नहीं होतीं। किन्तु एक का व्यय होकर दूसरी पर्याय का उत्पाद होता है। सम्यक्त्व गुण की पर्याय में सम्यक् रुचि और विपरीत रुचि – इन दोनों का उत्पाद एक ही साथ नहीं होता, किन्तु विपरीत रुचि के व्ययपूर्वक सम्यक्रुचि का उत्पाद होता है। इस प्रकार एक का उत्पाद, वह दूसरे का (पूर्व का) व्यय है। मिट्टी में घड़ारूपी अवस्था की जो उत्पत्ति है, वही पिण्डरूप अवस्था का विनाश है। घड़े की उत्पत्ति और पिण्ड का विनाश – यह दोनों भिन्न-भिन्न नहीं हैं। इसलिए पीछे की पर्याय का जो उत्पाद है, वह पूर्व की पर्याय के व्ययस्वरूप ही है।

इस प्रकार उत्पाद के साथ व्यय का अविनाभावीपना बतला कर पहला बोल कहा।

अब, दूसरे बोल में, व्यय के साथ उत्पाद का अविनाभावीपना बतलाते हैं।

2. जो व्यय है, वही उत्पाद है

व्यय, उत्पाद बिना नहीं होता। पूर्व की पर्याय का व्यय नवीन पर्याय के उत्पादरहित नहीं होता। पहली पर्याय का व्यय, दूसरी पर्याय के उत्पादस्वरूप है। मिट्टी के पिण्ड का जो व्यय है, वही घड़े का उत्पाद है। कोई कहे कि 'आत्मा में से अज्ञान का नाश तो हुआ है किन्तु अभी सच्चा ज्ञान प्रगट नहीं हुआ।' तो उसकी यह बात मिथ्या है, उसने वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव को नहीं जाना है।

इस उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव के निर्णय में तो समय-समय की स्वतन्त्रता का ज्ञान है। यहाँ घड़ा होने की बात में कुम्हार को तो याद भी नहीं किया है, क्योंकि यहाँ वस्तुस्वभाव की बात है, इसलिए घड़ा मिट्टी के उत्पादस्वभाव से होता है, यही बात ली है। इस प्रकार उपादान की स्वतन्त्रता को जाने, तभी संयोगरूप निमित्त को जान सकेगा।

यदि अपने को देखने की आँख खुले तो फिर दूसरों को देख सकें, उसी प्रकार यदि उपादान को पहिचाने, तभी निमित्त को पहिचाने। स्व-परप्रकाशक ज्ञान हो, तभी वह पर को जान सकता है। स्वभाव को जाने, तभी संयोग को जान सकता है। द्रव्य की ओर ढले, तभी पर्याय को जान सकता है। निश्चय को जाने, तभी व्यवहार का सच्चा ज्ञान हो।

एक सिद्धान्त में इन सभी बोलों का समावेश हो जाता है।

पहले बोल में उत्पाद, व्यय बिना नहीं होता - ऐसा कहा।

दूसरे बोल में व्यय, उत्पाद बिना नहीं होता - ऐसा कहा।

मिथ्याश्रद्धा का नाश हुआ है, किन्तु अभी नि:शंकता नहीं हुई है, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि मिथ्याश्रद्धा का नाश नि:शंकता की उत्पत्ति बिना नहीं होता। जिस क्षण पर की रुचि गयी, उसी क्षण स्व की रुचि हुई। अल्पज्ञता का अभाव, सर्वज्ञता के उत्पादरूप है। इस प्रकार एक का व्यय दूसरे के उत्पादसहित ही होता है। नास्ति अपेक्षा से मिथ्यात्व का व्यय और अस्ति अपेक्षा से सम्यक्त्व की उत्पत्ति, एक की नास्ति हुई, वह दूसरे भाव की अस्ति बतलाती है। मिट्टी में पिण्ड अवस्था दूर हुई और तत्पश्चात् घटरूप अवस्था हुई, इन दोनों के बीच भेद नहीं है, एक भाव का अभाव, वह उसके पीछे के भाव की उत्पत्तिवाला है। दूसरे भाव की उत्पत्ति रहित विनाश नहीं होता। इसलिए, कर्म का नाश हो तो मिथ्यात्वभाव दूर हो - ऐसा कर्म सन्मुख देखना नहीं रहा, किन्तु अपनी पर्याय में सम्यक्त्व के उत्पाद बिना मिथ्यात्व का व्यय नहीं है, इसलिए अपने परिणाम में देखना आया।

उत्पाद, व्यय के बिना नहीं होता और व्यय, उत्पाद के बिना नहीं होता। पीछे के भाव का जो उत्पाद है, वह पूर्व के भाव का विनाश है और पूर्व के भाव का जो विनाश है, वही पीछे के भाव का उत्पाद है - इस प्रकार दो प्रकार से उत्पाद-व्यय का अविनाभावीपना बतलाया। अब, उत्पाद-व्यय के साथ ध्रुव का अविनाभावीपना बतलाते हैं।

3. जो उत्पाद और व्यय है, वही ध्रुव है

मिट्टी में पिण्ड का व्यय और घड़े की उत्पत्ति होती है, वही मिट्टी की स्थिति है, क्योंकि व्यतिरेकों के द्वारा ही अन्वय प्रकाशित

होता है। व्यतिरेक अर्थात् उत्पाद-व्यय और अन्वय अर्थात् ध्रुव। पिण्ड के व्यय से और घड़े के उत्पाद से मिट्टी का सदृश अस्तित्व ज्ञात होता है। पिण्ड अवस्था मिटकर घड़ा हुआ किन्तु मिट्टी दिखायी नहीं देती - ऐसा नहीं हो सकता। मिट्टी की ध्रुवता बिना घड़े की उत्पत्ति और पिण्ड का व्यय काहे में होगा ? ध्रुवता के बिना उत्पाद-व्यय नहीं हो सकते।

यहाँ तो कहा है कि उत्पाद-व्यय द्वारा उस पदार्थ की ध्रुवता प्रकाशित होती है। घड़े के उत्पाद द्वारा मिट्टी की ध्रुवता प्रकाशित होती है, किन्तु घड़े के उत्पाद द्वारा 'कुम्हार ने घड़ा किया' - ऐसा प्रकाशित नहीं होता। पुद्गल में कर्म अवस्था का व्यय और दूसरी अवस्था का उत्पाद हो, उसके द्वारा पुद्गल परमाणु की ध्रुवता ज्ञात होती है, उसके द्वारा आत्मा का भाव ज्ञात नहीं होता। आत्मा में मिथ्यात्व का व्यय और सम्यक्त्व का उत्पाद हुआ, उसके द्वारा आत्मा की ध्रुवता ज्ञात होती है, किन्तु कर्म का नाश हुआ, उसके द्वारा आत्मा की ध्रुवता ज्ञात नहीं होती। प्रत्येक वस्तु में अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक ही साथ होते हैं। यह समझ ले तो पदार्थ का भेदज्ञान हो जाता है और कहीं पर में उल्टा-सीधा करने का मिथ्याभिमान दूर हो जाता है।

वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों एक ही साथ हैं, पूर्व पर्याय से व्ययरूप, वर्तमान पर्याय से उत्पादरूप और पूर्व-पश्चात् के अखण्डप्रवाह में द्रव्यपने को ध्रुवता है। उत्पाद और व्यय दोनों का समय भिन्न नहीं है, किन्तु एक का व्यय, वह दूसरे का उत्पाद है - इस प्रकार उनमें व्यतिरेकपना है और उन व्यतिरेकों में

अन्वयरूप से स्थित द्रव्य ध्रुव है। 'यह वही है' ऐसा ध्रुवपना उत्पाद-व्यय द्वारा ज्ञात होता है।

तीन प्रकार कहे - अब चौथे प्रकार में ध्रुव के साथ उत्पाद -व्यय का अविनाभावी बतलाते हैं।

4. जो ध्रुव (स्थिति) है, वही उत्पाद और व्यय है

मिट्टी की जो ध्रुवता है, वही घड़े का उत्पाद और पिण्ड का व्यय है, क्योंकि ध्रुव को छोड़कर उत्पाद-व्यय नहीं होते। ध्रुव उत्पाद-व्यय रहित नहीं होता। जहाँ ध्रुवता हो, वहाँ एक पर्याय का उत्पाद और पूर्व पर्याय का व्यय होता है। ध्रुव वस्तु है, किन्तु कोई अवस्था नहीं है - ऐसा नहीं हो सकता। ध्रुवस्थायी वस्तु में किसी नवीन अवस्था का उत्पाद और पुरानी अवस्था का व्यय होता ही है। उत्पाद-व्यय के बिना अकेला ध्रुव नहीं होता। ध्रुव को छोड़कर ध्रुव से पृथक् मात्र उत्पाद-व्यय नहीं होते। द्रव्य की ध्रुवता रहकर उत्पाद-व्यय होते हैं।

इस प्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों एक साथ ही हैं। यदि ऐसा न माना जाए और उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को एक-दूसरे के बिना भिन्न-भिन्न ही माना जाए तो उसमें दोष आता है। क्या दोष आता है ? वह फिर बतलायेंगे।

वस्तु में उत्पाद-व्यय और ध्रुव - यह तीनों एक साथ ही होते हैं, यदि ऐसा न माना जाए और उत्पाद-व्यय-ध्रुव इन तीनों को एक-दूसरे के बिना भिन्न-भिन्न ही माना जाए तो उसमें दोष आते हैं, वे दोष यहाँ बतलाते हैं—

मात्र उत्पाद मानने में आनेवाले दोष

यदि व्यय और ध्रुव के बिना मात्र उत्पाद ही माना जाए तो, एक तो उत्पादनकारण के बिना वह उत्पाद ही सिद्ध नहीं होगा अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। मिथ्यात्व का व्यय, सम्यक्त्व के उत्पाद का कारण है और आत्मा की ध्रुवता के आधार से सम्यक्त्व का उत्पाद होता है। आत्मा की ध्रुवता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना मात्र सम्यक्त्व के उत्पाद को ही ढूँढें तो वह नहीं मिलेगा। ध्रुव के आधार के बिना उत्पाद काहे में होगा? और मिथ्यात्व पर्याय का अभाव हुए बिना सम्यक्त्व पर्याय का उत्पाद कहाँ से होगा? नवीन पर्याय उत्पन्न होने का कारण पुरानी पर्याय का व्यय है और नवीन पर्याय उत्पन्न होने का आधार 'ध्रुव' है। ध्रुव के आधार के बिना ही यदि उत्पाद हो, तब तो असत् का उत्पाद हो। यदि मिथ्यात्व का व्यय न हो तो सम्यक्त्व का उत्पाद ही न हो और आत्मा की ध्रुवता बिना ही यदि कोई सम्यक्त्व का उत्पाद माने तो उसे असत् की उत्पत्ति होने का प्रसंग आये।

मिट्टी के पिण्ड के अभाव बिना और मिट्टी की ध्रुवता के बिना घड़े का उत्पाद नहीं हो सकता। उसी प्रकार आत्मा में वस्तु की ध्रुवता और अधर्म के नाश के बिना धर्म का उत्पाद नहीं होगा। ध्रुव त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। यदि ध्रुव के आधार बिना ही उत्पत्ति हो तो असत् की उत्पत्ति होगी।

देखो, सुख चाहिए है न ? तो वह सुख कहाँ ढूँढ़ना ? सुख का आधार ध्रुव आत्मा है और सुख का कारण दुःख का नाश है – उसमें सुख ढूँढे तो सुख मिलेगा। घर के या शरीर, स्त्री, सम्पत्ति के

आधार से सुख नहीं मिलेगा किन्तु आत्मा की ध्रुवता के आधार से और आकुलता के अभाव में सुख की प्राप्ति होगी। ध्रुवता सुख के उत्पाद का आधार है और आकुलता का व्यय सुख की उत्पत्ति का कारण है। इन दोनों को न माने तो सुख की उत्पत्ति ही न हो। पर के आश्रय के व्यय से और अपनी ध्रुवता के आश्रय से सुख का उत्पाद होता है। इसलिए सुख के लिए ध्रुव की ही रुचि करना आया। यहाँ कई उदाहरण दिये गये, तदनुसार समस्त द्रव्यों में प्रतिसमय जो उत्पाद होता है, वह ध्रुव और व्यय के बिना नहीं होता, ऐसा समझना। भाई ! यदि तुझे शान्ति प्रगट करना हो तो उसे तू अपने ध्रुव तत्त्व में ढूँढ। ध्रुव तत्त्व के आधार से शान्ति की उत्पत्ति होगी। अशान्ति का अभाव शान्ति की उत्पत्ति का कारण कहा है, किन्तु उस अशान्ति का अभाव और शान्ति की उत्पत्ति कब होती है ? यदि ध्रुव तत्त्व की दृष्टि करे तो। इस प्रकार शान्ति के लिए ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करना ही आया।

आत्मा और जड़ प्रत्येक पदार्थ में प्रति समय उत्पाद-व्यय -ध्रुव हो रहे हैं। यदि वे उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वतन्त्र न हों और दूसरे के कारण हों तो वह पदार्थ ही स्वयंसिद्ध न रहे। प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने ही आधीन हैं, एक समय में उत्पाद -व्यय-ध्रुव वस्तु का स्वभाव ही है। 99वीं गाथा में द्रव्य उत्पाद -व्यय-ध्रुववाला है, इतना ही सिद्ध किया था और इस 100वीं गाथा में अधिक स्पष्टता करके द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एकसाथ बतलाते हैं। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रुव को एकसाथ ही न मानें तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होती और दोष आता है, उसका यह वर्णन हो रहा है।

कोई मात्र उत्पाद को ही माने और उसके साथ ही व्यय तथा ध्रुव को न माने तो क्या होगा ? – वह कहते हैं। पिण्ड का अभाव, वह घड़े का उत्पादनकारण है। उस उत्पादनकारण बिना घड़े की उत्पत्ति ही नहीं होगी, अथवा तो ध्रुव मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगेगा। आत्मा में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति चेतन की नित्यता के आधार बिना और मिथ्यात्व के व्यय बिना नहीं हो सकती। परपदार्थ की रुचिरूप पूर्व की मिथ्याभ्रान्ति का नाश हुए बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति को ढूँढे तो वह नहीं मिलेगी और चैतन्यस्वरूप ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होगा।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति के साथ ही आत्मा की ध्रुवता और मिथ्यात्व का व्यय होता है, उन दोनों को माने बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। मिट्टी में मिट्टीपने की ध्रुवता और पिण्ड अवस्था के व्यय बिना घड़े की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती और यदि जगत में घड़ेरूप एक भाव की उत्पत्ति न हो तो जगत में सम्यक्त्व, सिद्धदशा आदि किन्हीं भावों की उत्पत्ति ही न हो। और यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा हो तो आकाश कुसुम भी हो अर्थात् वस्तु के अस्तित्व बिना अधर से ही नवीन-नवीन भाव उत्पन्न होने लगें – आत्मा के बिना ही सम्यक्त्व उत्पन्न हो, इस प्रकार महान दोष आता है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना कभी सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। पर से लाभ होगा – ऐसी जो मिथ्यारुचि है, उस परसन्मुख रुचि के अभाव के बिना और स्वद्रव्य की ध्रुवता के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में, ध्रुव ज्ञानानन्द

आत्मा के अवलम्बन से और अज्ञान के व्यय से सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ध्रुव चैतन्य बिना और अज्ञान के व्यय के बिना सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति ढूँढें तो वह नहीं मिलेगी।

उसी प्रकार चारित्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में - बाह्य क्रिया में या शरीर की नग्न अवस्था में आत्मा का चारित्र नहीं है। चारित्र अर्थात् आत्मा की वीतराग पर्याय, वह वीतराग पर्याय राग के अभाव से और ध्रुव चिदानन्द आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न होती है, महाव्रतादि के राग से वह उत्पन्न नहीं होती। ध्रुवता का अवलम्बन और राग का अभाव - इन दोनों के बिना वीतराग भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इसी प्रकार केवलज्ञान की उत्पत्ति ध्रुव चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन बिना और पूर्व की अपूर्ण ज्ञानदशा के व्यय बिना नहीं होती। आत्मा की ध्रुवता रहकर और अल्पज्ञता का व्यय होकर पूर्णज्ञान की उत्पत्ति होती है।

अन्तिम सिद्धदशा भी आत्मा की ध्रुवता और संसारदशा का व्यय - इन दोनों सहित ही होती है।

इसमें ध्रुवता सद्भावसाधन है और व्यय अभावसाधन है। उपरोक्त दृष्टान्तों के अनुसार जगत के जड़ या चेतन समस्त भावों के उत्पाद में समझना। किसी भी भाव का उत्पाद वस्तु की ध्रुवता के बिना, पूर्व भावों के व्यय बिना नहीं होता।

यदि मिट्टी के बिना ही घड़ा उत्पन्न होने लगे, तब तो आकाश -कुसुम की भाँति वस्तु के बिना ही जगत में अवस्थाएँ होने लगेंगी। जिस प्रकार आकाश के फूल नहीं हैं; उसी प्रकार ध्रुवस्वभाव

के बिना पर्याय का उत्पाद नहीं होता। ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना सम्यक्त्वपर्याय का उत्पाद नहीं हो सकता। जगत में यदि खरगोश के सींग हों, कछुए के बाल हों या आकाश के फूल हों तो ध्रुव के अवलम्बन बिना सम्यक्त्व हो – वह बात कभी नहीं हो सकती। ध्रुव तत्त्व के बिना मात्र शून्य में से ही किसी भाव की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए उत्पाद के साथ ध्रुव और व्यय को भी मानना चाहिए। ऐसा ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तुस्वरूप है, सर्वज्ञदेव के ज्ञान में इसी प्रकार ज्ञात हुआ है, उनकी वाणी में इसी प्रकार आया है, सन्तों ने भी इसी प्रकार जानकर कहा है और शास्त्रों में भी यही कथन है। ऐसे वस्तुस्वरूप को जो नहीं जानता, वह वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र को नहीं जानता।

देखो भाई ! सत् सरल है, सहज है, सुगम है, किन्तु अज्ञानता से विषम मान लिया है, इसलिए कठिन लगता है। सत्समागम से शान्त होकर समझे तो सत् सरल है, सहज है। वह वस्तुस्वभाव समझे बिना किसी प्रकार कल्याण नहीं होता।

वस्तु एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है। विकार की रुचि का अभाव और नित्य आत्मा के अवलम्बन के बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। वस्तु में यदि ध्रुव और व्यय न हो तो उत्पाद नहीं होता। इस प्रकार एक उत्पाद की बात की और मात्र उत्पाद मानने में दोष आता है, वह बतलाया। अब व्यय की बात करते हैं।

❀ ❀ ❀

मात्र व्यय मानने में आनेवाले दोष

ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय मानने में भी दोष आता है।

ध्रुव और उत्पाद के बिना मात्र व्यय नहीं होता।

कोई कहे, मिट्टी में पिण्डपर्याय का नाश हुआ किन्तु घटपर्याय की उत्पत्ति नहीं हुई और मिट्टी स्थायी नहीं रही तो ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकार कोई कहे कि हमारे परपदार्थों की रुचि का नाश तो हो गया है किन्तु स्वपदार्थ की रुचि उत्पन्न नहीं हुई और आत्मा का ध्रुवपना भासित नहीं हुआ है तो उसकी बात मिथ्या है। जिस क्षण पर में सुखबुद्धि का नाश हुआ, उसी क्षण आत्मा की रुचि न हो और उसकी ध्रुवता का आधार भासित न हो – ऐसा नहीं हो सकता। सम्यक्त्व का उत्पाद और आत्मा की ध्रुवता के बिना मिथ्यात्व का व्यय नहीं होता।

पिण्डदशा के नाश का कारण घड़े की उत्पत्ति है और घड़े में मिट्टीपना स्थायी रहकर पिण्ड का व्यय होता है, पिण्ड का व्यय होने पर भी मिट्टी ध्रुव रहती है। यदि वस्तु में नवीन भावों की उत्पत्ति और वस्तु की ध्रुवता न मानें तो जगत में कारण के अभाव में किन्हीं भावों का नाश ही नहीं होगा अथवा तो सत् का ही सर्वथा नाश हो जावेगा। स्व की रुचि के उत्पाद बिना और ध्रुव आत्मा के अवलम्बन बिना ही यदि कोई मिथ्यारुचि का व्यय करना चाहे तो व्यय हो ही नहीं सकता अथवा तो मिथ्यारुचि के नाश के साथ आत्मा का ही नाश हो जाएगा। इसलिए ध्रुव और उत्पाद इन दोनों भावों के बिना मात्र व्यय नहीं होता। ऐसा सभी भावों में समझना।

सर्वज्ञदेव का देखा हुआ और कहा हुआ वस्तु का स्वरूप त्रिकाल सनातन इसी प्रकार वर्त रहा है, उसमें कोई अन्यथा

कल्पना करे तो वस्तुस्वरूप में तो कुछ फेरफार नहीं हो सकता, किन्तु उसकी मान्यता में मिथ्यात्व होगा।

कोई कहे कि 'अपने को दूसरा कुछ समझने का काम नहीं है, बस, राग-द्वेष को दूर करो।' तो ऐसा कहनेवाला किस भाव में स्थिर रहकर राग-द्वेष को दूर करेगा ? राग-द्वेष का नाश होने से, वीतरागभाव की उत्पत्ति और आत्मा की ध्रुवता - इन दोनों को माने बिना अपने अस्तित्व को ही नहीं माना जा सकता और राग-द्वेष का नाश भी सिद्ध नहीं होगा। यदि ध्रुवपना न माने तो चेतन की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश नहीं होगा। यदि ध्रुव बिना ही राग-द्वेष का नाश होना माने तो राग-द्वेष का नाश होने से आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहा और यदि वीतरागता का उत्पाद न माने तो राग-द्वेष का नाश ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे भाव की उत्पत्ति के बिना पहले के भाव का नाश ही नहीं होता। राग का व्यय, वीतरागता की उत्पत्तिरूप है और उसमें चैतन्यपने की ध्रुवता है। ध्रुव के लक्ष्य से, वीतरागता की उत्पत्ति होने से, राग का व्यय होता है। इस प्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों एकसाथ हैं। वीतरागता के उत्पाद बिना राग का व्यय नहीं हो सकता और इस प्रकार जगत में मिथ्यात्व, अज्ञान, शरीर, घड़ा आदि किसी भाव का व्यय नहीं होगा, यह दोष आयेगा। और चेतन की ध्रुवता के बिना ही राग-द्वेष का नाश हो तो उस राग के साथ सत् आत्मा का भी नाश हो गया, इसलिए ध्रुव के बिना व्यय मानने से जगत में समस्त भावों का नाश हो जायेगा - यह महान दोष आता है। इसलिए वस्तु में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही हैं - ऐसा वस्तुस्वरूप समझना चाहिए।

घड़े की उत्पत्तिरूप व्ययकारण के अभाव में मिट्टी में पिण्ड का व्यय नहीं होगा और यदि पिण्ड का व्यय न हो तो उसकी भाँति जगत में अज्ञान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि किसी भी भाव का व्यय नहीं होगा। ऐसा दोष आता है और ध्रुवता के बिना राग-द्वेष का नाश होना माने तो उसकी श्रद्धा में आत्मा का नाश हो जाता है। यद्यपि आत्मा का तो नाश नहीं होता, किन्तु आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना जो मानता है, उसकी मान्यता में आत्मा का ही अभाव हो जाता है, यानि उसकी मान्यता मिथ्या होती है।

कर्म, पुद्गल की पर्याय है। उस पर्याय का नाश उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद बिना नहीं होता। कर्म का नाश आत्मा करता है – ऐसा तो नहीं है। कर्म आत्मा को बाधक होते हैं, इसलिए उनका नाश करो – ऐसा माननेवाला तो मूढ़ है, किन्तु जो ध्रुवस्वभाव के अवलम्बन बिना राग-द्वेष का नाश करना माने, वह भी मूढ़ है। जड़ कर्मों का नाश पुद्गल की ध्रुवता को और उसकी नवीन पर्याय के उत्पाद का अवलम्बन लेता है। आत्मा के वीतरागभाव से पुद्गल में कर्मदशा का व्यय हुआ – ऐसा वास्तव में नहीं है। हाँ, आत्मा में ध्रुव के आश्रय से वीतरागता की उत्पत्ति होने से राग का व्यय होता है। वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को उस वस्तु के साथ ही सम्बन्ध है, किन्तु एक वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुव को दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह तो सनातन सत्य वस्तुस्थिति के महान नियम हैं। ईश्वर ने जीव को बनाया है, इस प्रकार ईश्वर को कर्ता माने अथवा तो

निमित्त आये, वैसी पर्याय होती है – इस प्रकार दूसरी वस्तु को पर्याय की उत्पत्ति का कारण माने तो वे दोनों मान्यताएँ मिथ्या ही हैं, उसमें वस्तु की स्वतन्त्रता नहीं रहती। प्रत्येक वस्तु में प्रतिसमय स्वतन्त्र अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव होता है, ऐसी ही वस्तुस्थिति है, कोई ईश्वर या कोई निमित्त उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव में कुछ नहीं करते। कोई ऐसा कहे कि सम्पूर्ण वस्तु को दूसरे ने बनाया है और दूसरा कहे कि वस्तु की अवस्था को दूसरे ने बनाया है तो उन दोनों की मिथ्या मान्यता में परमार्थत: कोई अन्तर नहीं है।

जिसने एकसमय में वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव को नहीं जाना, उसकी मान्यता में अवश्य कुछ न कुछ दोष आता है। यदि वस्तु में एक भाव का व्यय होने से उसी समय नवीन भाव की उत्पत्ति न हो और वस्तु की ध्रुवता न रहे तो व्यय होने से सत् का ही नाश हो जाएगा, इसलिए जगत के समस्त पदार्थों का नाश हो जाता है। चैतन्य की ध्रुवता रहकर और सम्यक्त्व भाव की उत्पत्ति होकर ही मिथ्यात्वभाव का व्यय होता है।

प्रत्येक समय का सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला है। उन उत्पाद -व्यय-ध्रुव तीनों को एकसाथ न मानें तो उसकी सिद्धि ही नहीं होती। पर के कारण उत्पाद-व्यय-ध्रुव माने वह तो मिथ्या ही है, और अपने में भी उत्पाद, व्यय या ध्रुव को एक-दूसरे के बिना माने तो वह भी वस्तु को नहीं जानता है। देव-गुरु के कारण अपने में सम्यक्त्व का उत्पाद होना माने तो उसे सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता और अपने में मिथ्यात्व का व्यय तथा आत्मा की ध्रुवता – इन दोनों के बिना सम्यक्त्व का उत्पाद सिद्ध नहीं होता। इसी

प्रकार मिथ्यात्व का व्यय भी सम्यक्त्व का उत्पाद और चैतन्य की ध्रुवता के बिना सिद्ध नहीं होता।

पैसे खर्च करने से आत्मा को धर्म हो – यह बात मिथ्या है, क्योंकि पैसे की एक पर्याय का व्यय उसकी दूसरी पर्याय के उत्पाद का कारण है, किन्तु आत्मा की धर्मपर्याय के उत्पाद का कारण वह नहीं है। पूर्व पर्याय का विनाश और उत्तर पर्याय की उत्पत्ति उन दोनों को आपस में एक-दूसरे का कारण कहा है। आत्मा की ध्रुवता के अवलम्बन से मिथ्यात्व का नाश हुआ वह सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है। और सम्यक्त्व का उत्पाद हुए बिना तथा आत्मा की ध्रुवता रहे बिना यदि मिथ्यात्व का नाश हो जाए तो उस मिथ्यात्व का नाश होने से आत्मा ही कुछ नहीं रहा, इसलिए मात्र व्यय की मान्यता में आत्मा का ही नाश हो गया और इसी प्रकार जगत के समस्त सत् पदार्थों का उसकी मान्यता में नाश हो जाता है अर्थात् उत्पाद और ध्रुवता के बिना मात्र व्यय को ही माननेवाला नास्तिक जैसा हो जाता है।

अहो ! ध्रुवस्वभाव की सन्मुखता से वीतरागता की उत्पत्ति के बिना यदि राग-द्वेष के नाश का प्रारम्भ करने जाए तो उसके कभी राग-द्वेष का नाश नहीं होता। आत्मा की ध्रुवता को लक्ष्य में लिये बिना जिसने राग को घटाना माना, उसने उस राग को घटाने से आत्मा को ही घटा दिया। राग कैसे कम होता है ? राग को कम करने के लक्ष्य से राग कम नहीं होता, किन्तु यदि ध्रुवता का अवलम्बन ले और वीतरागभाव की उत्पत्ति हो तो राग का व्यय होता है।

जगत के चेतन और जड़ छहों पदार्थों में प्रतिसमय उनके स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। यदि कोई मात्र उत्पाद को ही माने तो वह पदार्थों की ही नवीन उत्पत्ति मानता है और यदि कोई व्यय को ही माने तो वह पदार्थों का ही नाश मानता है - ऐसा माननेवाला जीव सर्वज्ञ को, गुरु को, शास्त्र को या ज्ञेयों के स्वभाव को नहीं मानता और अपने ज्ञानस्वभाव से आत्मा को भी वह नहीं मानता। देव-गुरु-शास्त्र भी ऐसी ही वस्तुस्थिति कहते हैं। ज्ञेय का स्वभाव भी ऐसा ही है और आत्मा का स्वभाव उसे जानने का है - ऐसी वस्तुस्थिति है, वह समझने योग्य है। यह समझे तभी ज्ञान में शांति हो और वीतरागता हो सकती है। यथार्थ वस्तुस्थिति को समझे बिना ज्ञान में कभी शान्ति या वीतरागता नहीं होती।

1. उत्पाद, व्यय और ध्रुव के बिना नहीं होता।

2. व्यय, उत्पाद और ध्रुव के बिना नहीं होता।

यह दो बातें सिद्ध कीं। उत्पाद और व्यय - दोनों ध्रुव के बिना नहीं होते - इस बात का भी उन दो बोलों में समावेश हो गया। अब, तीसरी बात सिद्ध करते हैं कि—

3. ध्रुव, उत्पाद और व्यय के बिना नहीं होता। उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को मानने से क्या दोष आता है, वह कहते हैं।

❀ ❀ ❀

मात्र ध्रुव मानने में आनेवाले दोष

यदि मात्र ध्रुव को ही माना जाये तो वह ध्रुवतत्त्व उत्पाद-व्यय का उल्लंघन कर गया। पिण्ड के नाश बिना और घड़े की उत्पत्ति

बिना मिट्टी की ध्रुवता काहे में रहेगी ? परिणाम के बिना परिणामी सिद्ध ही नहीं हो सकता। उत्पाद-व्यय के बिना ध्रुव को निश्चित कौन करेगा ? ध्रुव स्वयं ध्रुव को निश्चित् नहीं करता किन्तु नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय के व्यय द्वारा ध्रुव निश्चित होता है।

'आत्मा मात्र कूटस्थ-ध्रुव है' ऐसा कोई कहे, तो उसने भी 'पहले आत्मा को कूटस्थ नहीं माना था, किन्तु परिणामी माना था' - उस मान्यता का नाश हुआ और 'आत्मा कूटस्थ है' - ऐसी मान्यता का उत्पाद हुआ, इस प्रकार कूटस्थ माननेवाले में अपने में ही उत्पाद-व्यय आ गये। ऐसे उत्पाद-व्यय के बिना कूटस्थ माननेवाला भी सिद्ध नहीं होता।

कोई कहे कि हमें तो मात्र ध्रुव ही रखना है, उत्पाद-व्यय नहीं चाहिए, तो मात्र उस ध्रुव को ही प्राप्त करनेवाले को, उत्पाद-व्यय से रहित ध्रुवता ही नहीं रहेगी अथवा तो क्षणिक उत्पाद-व्यय स्वयं ही ध्रुव हो जाएँगे। यदि एक वस्तु ध्रुव न रहे तो जगत की कोई वस्तु ध्रुव नहीं रहेगी। अथवा राग-द्वेष आदि जो क्षणिक विकल्प हैं, वे भी ध्रुव ही हो जायेंगे, इसलिए प्रतिक्षण होनेवाले विकल्प ही द्रव्य हो जाएँगे, यह महान दोष आता है।

वस्तु एकान्त नित्य नहीं है किन्तु अनेकान्तस्वरूप है। वस्तु नित्य-अनित्यरूप, एक-अनेकरूप - ऐसे अनेकान्तस्वरूपवाली है। वस्तु में यदि नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानी पर्याय का व्यय न हो तो उसकी अनित्यता, अनेकता ही सिद्ध नहीं होगी। अथवा क्षणिक उत्पाद-व्यय स्वयं ही ध्रुव हो जाएगा, इसलिए प्रतिसमय

का द्रव्य भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होगा और वस्तु को सर्वथा अनेकता ही हो जाएगी। ऐसा होने से वस्तु की अखण्ड एकता-नित्यता सिद्ध नहीं होगी। इसलिए अनेकान्तमय वस्तु में नवीन भाव की उत्पत्तिसहित और पुराने भाव के नाशसहित ही ध्रुवता है - ऐसा मानना।

पहले की पर्याय का व्यय, पीछे की पर्याय का उत्पाद और अखण्ड सम्बन्ध की अपेक्षा से ध्रुवता - इन तीनों के साथ द्रव्य अविनाभावी है, ऐसा द्रव्य अबाधितरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप (त्रिलक्षणरूप) चिह्नवाला है - ऐसा अवश्य सम्मत करना।

❀ ❀ ❀

यहाँ उत्पाद में नवीन भाव की उत्पत्ति करना है, इसलिए उसमें 'सर्ग को शोधनेवाला' ऐसी भाषा का उपयोग किया है।

व्यय में वर्तमान भाव का नाश है, इसलिए उसमें संहार को आरम्भ करने वाला' - ऐसी भाषा का उपयोग किया है।

ध्रुव में जो है, उसकी स्थिति की बात है, इसलिए 'स्थिति प्राप्त करने के लिए जाने वाला' - ऐसी भाषा का उपयोग किया है। इस प्रकार तीनों बोलों की शैली में अन्तर डाला है।

❀ ❀ ❀

(प्रवचनसार गाथा 100 का सार)

प्रत्येक पदार्थ में प्रतिसमय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। यदि उन तीनों को एकसाथ न माना जाए तो उसमें दोष आता है, वह दोष बतलाकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अविनाभावीपना इस गाथा

में दृढ़ किया है।

1. यदि मात्र उत्पाद ही माना जाए तो—

1. पुरानी पर्याय के व्यय बिना नवीन पर्याय की उत्पत्ति नहीं होगी। अथवा
2. ध्रुव के आधार बिना असत् की उत्पत्ति होगी, इसलिए एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ हों, तभी उत्पाद होगा।

2. यदि मात्र व्यय ही माना जाये तो—

1. नवीन पर्याय के उत्पाद बिना पुरानी पर्याय का व्यय ही नहीं होगा। अथवा
2. ध्रुवपना रहे बिना ही व्यय होगा तो सत् का ही नाश हो जाएगा। इसलिए एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों साथ ही हों, तभी व्यय सिद्ध होगा।

3. उत्पाद-व्यय के बिना मात्र ध्रुव को ही मानें तो—

1. उत्पाद-व्ययरूप व्यतिरेक के बिना ध्रुवपना ही नहीं रहेगा। अथवा
2. एक अंश है, वही सम्पूर्ण उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक समय में साथ ही हों तभी ध्रुवपना रह सकेगा।

मिट्टी में घड़ा आदि किसी भी एक पर्याय के उत्पाद बिना और पिण्ड आदि किसी एक पूर्व पर्याय के व्यय बिना मिट्टी की ध्रुवता ही नहीं रहेगी और यदि मिट्टी की ध्रुवता न रहे तो मिट्टी की भाँति जगत के किन्हीं भी भावों की ध्रुवता नहीं रहेगी, सर्वनाश हो जाएगा।

अथवा जो क्षणिक है, वही ध्रुव हो जाए तो मन के विकल्प – राग–द्वेष–अज्ञान–कर्म यह सब ध्रुव हो जाएँगे। यदि उत्पाद –व्यय न हों तो अज्ञान का नाश करके सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, संसार का व्यय होकर सिद्धदशा की उत्पत्ति, क्रोधभाव दूर होकर क्षमाभाव की उत्पत्ति – ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा।

इसलिए द्रव्य को उत्पाद–व्यय–ध्रुववाला एक साथ ही मानना। वह किस प्रकार ? पूर्व–पूर्व परिणामों के व्यय के बिना, पीछे–पीछे के परिणामों के उत्पाद के साथ और अन्वय अपेक्षा से ध्रुव के साथ द्रव्य को अविनाभाववाला मानना। उत्पाद–व्यय और ध्रुव – यह तीनों एकसाथ निर्विघ्नरूप से द्रव्य में हैं – ऐसा सम्मत करना, नि:सन्देहरूप से निश्चित करना। मात्र उत्पाद, मात्र व्यय या मात्र ध्रुवता द्रव्य का लक्षण नहीं है किन्तु उत्पाद–व्यय और ध्रुव – यह तीनों एक साथ ही द्रव्य का लक्षण है – ऐसा जानना।

— गाथा 100 पूर्ण —

❀ ❀ ❀

प्रवचनसार, गाथा-१०१

अथोत्पादादीनां द्रव्यादर्थान्तरत्वं संहरति -

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वम्हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं।।१०१।।

उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः।
द्रव्ये हि सन्ति नियतं तस्माद्द्रव्यं भवति सर्वम्।।१०१।।

उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते, ते पुनः पर्याया द्रव्यमालम्बन्ते। ततः समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं, न पुनर्द्रव्यान्तरम्। द्रव्यं हि तावत्पर्यायैरालम्ब्यते, समुदायिनः समुदायात्मकत्वात्; पादपवत्। यथा हि समुदायी पादपः स्कन्धमूलशाखासमुदायात्मकः स्कन्धमूलशाखाभिरालम्बित एव प्रतिभाति, तथा समुदायि द्रव्यं पर्यायसमुदायात्मकं पर्यायैरालम्बितमेव प्रतिभाति। पर्यायास्तूत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्ते, उत्पादव्ययध्रौव्याणामंशधर्मत्वात्; बीजाङ्कुरपादपत्ववत्। यथा किलांशिनः पादपस्य बीजाङ्कुरपादपत्व-लक्षणास्त्रयोंऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति, तथांशिनो द्रव्यस्योच्छिद्यमानोत्पद्य-मानावतिष्ठमानभावलक्षणास्त्रयोंऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति। यदि पुनर्भङ्गोत्पादध्रौव्याणि द्रव्यस्यैवेष्यन्ते तदा समग्रमेव विप्लवते। तथा हि - भङ्गे तावत् क्षणभङ्गकटाक्षितानामेकक्षण एव सर्वद्रव्याणां सहरणाद्द्रव्य-शून्यतावतारः सदुच्छेदो वा। उत्पादे तु प्रतिसमयोत्पादमुद्रितानां प्रत्येकं द्रव्याणामानन्त्य-मसदुत्पादो वा। ध्रौव्ये तु क्रमभुवां भावानामभावाद्द्रव्यस्याभावः क्षणिकत्वं वा। अत उत्पादव्ययध्रौव्यै-रालम्ब्यन्तां पर्यायाः पर्यायैश्च द्रव्यमालम्ब्यतां, येन समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं भवति।।१०१।।

अब, उत्पादादि का द्रव्य से अर्थान्तरत्व को नष्ट करते हैं; (अर्थात् यह सिद्ध करते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं हैं) -

उत्पाद, व्यय अरु ध्रौव्य तीनों, वर्तते पर्याय में।
पर्याय होती द्रव्य में, इससे सभी वे द्रव्य हैं॥

अन्वयार्थ : [**उत्पादस्थितिभङ्गाः**] उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय [**पर्यायेषु**] पर्यायों में [**विद्यन्ते**] वर्तते हैं; [**पर्यायाः**] पर्यायें [**नियतं**] नियम से [**द्रव्ये हि सन्ति**] द्रव्य में होती हैं, [**तस्मात्**] इसलिए [**सर्वं**] वह सब [**द्रव्यं भवति**] द्रव्य है।

टीका : उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन करते हैं, और वे पर्यायें द्रव्य का आलम्बन करती हैं, (अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रय से है और पर्यायें द्रव्य के आश्रय से हैं); इसलिए यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं।

प्रथम तो द्रव्य पर्यायों के द्वारा आलम्बित है (अर्थात् पर्यायें द्रव्याश्रित हैं), क्योंकि समुदायी[1] समुदायस्वरूप होता है; वृक्ष की भाँति। जैसे, समुदायी वृक्ष स्कन्ध, मूल और शाखाओं का समुदायस्वरूप होने से स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित (दिखायी) देता है, इसी प्रकार समुदायी द्रव्य पर्यायों का समुदायस्वरूप होने से पर्यायों के द्वारा आलम्बित ही भासित होता है। (अर्थात् जैसे स्कन्ध, मूल शाखाएँ वृक्षाश्रित ही हैं - वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं, उसी प्रकार पर्यायें द्रव्याश्रित ही हैं - द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं।)

और पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा आलम्बित हैं (अर्थात्

1. **समुदायी = समुदायवान समुदाय (समूह) का बना हुआ। (द्रव्य समुदायी है क्योंकि पर्यायों के समुदायस्वरूप है।)**

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायाश्रित हैं) क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं (अंशी[1] के नहीं); बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति। जैसे अंशीवृक्ष के बीज अंकुर-वृक्षत्वस्वरूप तीन अंश, व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों से आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं, उसी प्रकार अंशी-द्रव्य के, नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव, और अवस्थित रहनेवाला भाव - यह तीनों अंश व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों के द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं। किन्तु यदि (1) भंग, (2) उत्पाद और (3) ध्रौव्य को (अंशी का न मानकर) द्रव्य का ही माना जाए तो सारा विप्लव[2] को प्राप्त होगा। यथा - (1) पहले, यदि द्रव्य का ही भंग माना जाए तो क्षण[3] भंग से लक्षित समस्त द्रव्यों का एक क्षण में ही संहार हो जाने से द्रव्यशून्यता आ जाएगी, अथवा सत् का उच्छेद हो जाएगा। (2) यदि द्रव्य का ही उत्पाद माना जाए तो समय-समय पर होनेवाले उत्पाद के द्वारा चिह्नित ऐसे द्रव्यों को प्रत्येक को अनन्तता आ जाएगी। (अर्थात् समय-समय पर होनेवाला उत्पाद जिसका चिह्न हो ऐसा प्रत्येक अनन्त द्रव्यत्व को प्राप्त हो जाएगा) अथवा असत् का उत्पाद हो जाएगा; (3) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाए तो क्रमश: होनेवाले भावों के अभाव के कारण द्रव्य का अभाव आयेगा, अथवा क्षणिकपना होगा।

इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के द्वारा पर्यायें आलम्बित हों,

---

1. अंशी = अंशोंवाला; अंशों का बना हुआ। (द्रव्य अंशी है।)
2. विप्लव = अन्धाधुन्धी = उथलपुथल; घोटाला; विरोध।
3. क्षण = विनाश जिनका लक्षण हो ऐसे।

और पर्यायों के द्वारा द्रव्य आलम्बित हो, कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य हैं।

भावार्थ – बीज, अंकुर और वृक्षत्व, यह वृक्ष के अंश हैं। बीज का नाश, अंकुर का उत्पाद और वृक्षत्व का ध्रौव्य – तीनों एक ही साथ होते हैं। इस प्रकार नाश बीज के आश्रित है, उत्पाद अंकुर के आश्रित है, और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित है; नाश, उत्पाद और ध्रौव्य बीज अंकुर और वृक्षत्व से भिन्न पदार्थरूप नहीं है। तथा बीज, अंकुर और वृक्षत्व भी वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं है। इसलिए यह सब एक वृक्ष ही हैं। इसी प्रकार नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और ध्रौव्य भाव सब द्रव्य के अंश हैं। नष्ट होते हुए भाव का नाश, उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद और स्थायी भाव का ध्रौव्य एक ही साथ है। इस प्रकार नाश नष्ट होते भाव के आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होते भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थायी भाव के आश्रित है। नाश, उत्पाद और ध्रौव्य उन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। और वे भाव भी द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं। इसलिए यह सब, एक द्रव्य ही हैं॥ 101॥

❀ ❀ ❀

गाथा 101 पर प्रवचन

पदार्थ के स्वरूप का सूक्ष्म विज्ञान

इस प्रवचनसार के ज्ञेय अधिकार की 100वीं गाथा में उत्पाद -व्यय-ध्रुव का अविनाभावी दृढ़ किया।

अब उत्पादादिक का द्रव्य से अर्थान्तरपना नष्ट करते हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य से पृथक् पदार्थ नहीं है, किन्तु वह सब एक द्रव्य ही है - ऐसा सिद्ध करते हैं—

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया।
दव्वे हि संति णियदं तम्हा दव्व हवदि सव्वं॥101॥

उत्पाद, व्यय अरु ध्रौव्य तीनों, वर्तते पर्याय में।
पर्याय होती द्रव्य में, इससे सभी वे द्रव्य हैं॥

उत्पाद, स्थिति और भंग पर्यायों में वर्तते हैं, पर्यायें नियम से द्रव्य में होती हैं, इसलिए (वह) सब द्रव्य है।

'उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य वास्तव में पर्यायों का आलम्बन लेते हैं और ये पर्यायें द्रव्य का अवलम्बन लेती हैं, इसलिए यह सब एक ही द्रव्य है, द्रव्यान्तर नहीं है।'

अब उसका विस्तार से स्पष्टीकरण करते हैं—

'प्रथम तो द्रव्य और पर्यायों द्वारा आलम्बित होता है, क्योंकि समुदायी समुदायस्वरूप होता है।'

द्रव्य का ही नाश, द्रव्य का ही उत्पाद या द्रव्य की ही ध्रुवता

– ऐसा नहीं है, उस एक-एक में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आ जाता, किन्तु उत्पाद किसी पर्याय का है, व्यय भी पर्याय का है और ध्रुवता भी पर्याय की है, इसलिए उत्पाद, व्यय और ध्रुव – यह तीनों, तीन पर्यायों के अवलम्बन से हैं और उन पर्यायों का समुदाय द्रव्य का अवलम्बन लेता है। (यहाँ 'पर्याय' का अर्थ द्रव्य का एक अंश समझना।) पर्याय अंश है और द्रव्य अंशी है। द्रव्य समुदायी है, वह पर्यायों के समुदाय से बना है। जिस प्रकार 'समुदायी वृक्ष स्कन्ध, मूल और शाखाओं के समुदायस्वरूप होने से स्कन्ध, मूल और शाखाओं से आलम्बित ही भासित होता है, उसी प्रकार समुदायी द्रव्य, पर्यायों के समुदायस्वरूप होने से पर्यायों द्वारा आलम्बित ही भासित होता है।' तना, मूल और डालियाँ – यह तीनों वृक्ष के अंश हैं और वे तीनों मिलकर पूरा वृक्ष है। उसी प्रकार पर्यायें वस्तु के अंश हैं, वे पर्यायें वस्तु के अंश वस्तु से पृथक् नहीं हैं।

पहले 100वीं गाथा में तो द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ-परस्पर अविनाभावी हैं – ऐसा सिद्ध किया। अब यहाँ यह सिद्ध करते हैं कि वे उत्पाद, व्यय और ध्रुव किसके हैं? द्रव्य के या पर्याय के? उत्पाद, व्यय और ध्रुव पर्यायों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं और वे उत्पाद, व्यय, ध्रुव वाली तीनों पर्यायें (अंश) द्रव्य के ही आश्रय से हैं। द्रव्य के आश्रय से पर्यायें हैं और उन पर्यायों के अवलम्बन से उत्पाद, व्यय, ध्रुव हैं।

'पर्यायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा आलम्बित होती हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों के आश्रित हैं, क्योंकि उत्पाद-व्यय

-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं।' वस्तु में उत्पाद, व्यय और ध्रुव हैं, वे पर के कारण नहीं हैं, पर में नहीं हैं और पर के भी नहीं हैं, किन्तु वे अपनी पर्याय के ही हैं। उत्पाद पर्याय का है, व्यय भी पर्याय का है और ध्रुवता भी पर्याय की है। इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप वस्तु है। आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ, उस समय के उत्पाद-व्यय -ध्रुव इस प्रकार हैं—उस समय सम्यक्त्वपर्याय की अपेक्षा से उत्पाद है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा उत्पन्न नहीं हुआ है; मिथ्यात्वपर्याय की अपेक्षा से व्यय है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा व्यय को प्राप्त नहीं हुआ है; और अखण्ड प्रवाह में वर्तते हुए ध्रुव अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है, कहीं सम्पूर्ण आत्मा ध्रुव नहीं है। इस प्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव द्रव्य के नहीं हैं, किन्तु द्रव्य के एक-एक अंश के हैं और वे अंश द्रव्य के हैं। दूसरे की पर्याय के कारण या दूसरे की पर्याय में वे अंश नहीं हैं। विकार आत्मा का स्थायी स्वभाव नहीं है, इसलिए उस अंश का उत्पाद पर में होता होगा? तो कहते हैं कि नहीं, उस विकार का उत्पाद भी आत्मा की पर्याय के आश्रित है और वह पर्याय आत्मद्रव्य के आश्रय से बनी हुई है, कर्म के उदय के आश्रय से वह विकारी पर्याय स्थित नहीं है। विकारी पर्याय भी स्वज्ञेय का अंश है। विकार अंश को यदि पर का अथवा पर के कारण हुआ कहा जाये तो सम्पूर्ण स्वज्ञेय सिद्ध नहीं होता। एक अंश को निकाल देने से आत्मा ही सिद्ध नहीं होगा और यदि उस विकार के उत्पाद को अंश का (पर्याय का) न मान कर द्रव्य का ही माना जाए तो सम्पूर्ण द्रव्य ही विकारमय हो जाएगा; इसलिए विकाररहित स्वभाव है, वह स्वज्ञेयरूप से नहीं रहेगा और विकार दूर होकर अविकारीपना भी नहीं हो सकेगा।

उत्पाद, व्यय, ध्रुव किसके होते हैं ? पर्याय के।

पर्याय काहे में होती है ? द्रव्य में।

इस प्रकार सबको एक द्रव्य में ही समा दिया है।

घट, पिण्ड और मिट्टीपना – इन तीनों अंशों के समुदायस्वरूप मिट्टी है। इन तीन अंशों के बिना मिट्टी सिद्ध नहीं हो सकती। उसमें उत्पाद, घट के आश्रय से है; व्यय, पिण्ड के आश्रय से है; और ध्रुवता, मिट्टीपने के आश्रय से है तथा वह घट, पिण्ड और मिट्टीपना, यह तीनों अंश मिट्टी के आश्रय से हैं। इस प्रकार एक मिट्टी में सब समा जाते हैं।

जीव में रागादि उदयभाव हुआ, वह उदयभाव किसका ? द्रव्य का, पर्याय का या पर का ? तो कहते हैं कि वह उदयभाव पर का नहीं है, वह उदयभाव द्रव्य का नहीं है, किन्तु वह उदयभाव उस समय की आत्मा की पर्याय का है। उदयभाव स्वज्ञेय की पर्याय है।

1. उत्पाद, व्यय, ध्रुव – तीनों एक साथ हैं, यह बात 100वीं गाथा में सिद्ध की।

2. अब यहाँ, उत्पाद, व्यय, ध्रुव अंश के (पर्याय के) हैं और

3. वे पर्यायें (अंश) द्रव्य की हैं – ऐसा कहकर उन सबको एक द्रव्य में ही समा देते हैं।

किसी भाव का उत्पाद होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नवीन उत्पन्न नहीं होता किन्तु नवीन पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय, द्रव्य के आश्रित है।

किसी भाव का व्यय होने से सम्पूर्ण द्रव्य ही नाश को प्राप्त नहीं होता, किन्तु पर्याय नष्ट होती है और वह पर्याय, द्रव्य के आश्रित है।

परिणामों के प्रवाह में ध्रुवतारूप से द्रव्य ही ध्रुव नहीं है, किन्तु अंश की अपेक्षा से ध्रुवता है, ध्रुवता भी द्रव्य का एक अंश है - सम्पूर्ण द्रव्य नहीं है। किन्तु वह ध्रुव अंश द्रव्य के आश्रय से है।

इस प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंश के हैं और उन अंशों का समूह द्रव्य है। इस प्रकार 'द्रव्य' में सब समा जाते हैं।

उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव द्रव्य के ही आश्रय से नहीं हैं अर्थात् द्रव्य के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव नहीं हैं, किन्तु पर्याय के हैं और वे पर्यायें द्रव्य की हैं। उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव - उनमें से किसी एक में ही सम्पूर्ण द्रव्य का समावेश नहीं हो जाता किन्तु वे तो एक-एक पर्याय के हैं। उत्पाद सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता किन्तु उत्पन्न होनेवाली पर्याय को बतलाता है; व्यय भी सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता है तथा ध्रुव भी सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं बतलाता, किन्तु वह पर्याय को (अंश को) ही बतलाता है। इस प्रकार वे प्रत्येक एक-एक पर्याय को बतलाते हैं और उन तीनों पर्यायों का समूह द्रव्य को बतलाता है - द्रव्य, पर्यायों के समूहस्वरूप है।

किसी भी द्रव्य का कोई भी एक समय लो तो उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव - तीनों एकसाथ पर्यायों के आश्रय से हैं। मात्र उत्पाद में, व्यय में या ध्रुव में सम्पूर्ण द्रव्य नहीं आ जाता; इसलिए वे द्रव्य के आश्रय से नहीं, किन्तु पर्यायों के आश्रय से है - ऐसा कहा है। उत्पाद धर्म किसी पर्याय के आश्रय से है, व्यय धर्म भी किसी पर्याय के आश्रय से है और ध्रौव्यत्वरूप धर्म भी किसी

पर्याय (अंश) के आश्रय से है, इसलिए उन्हें पर्यायों के धर्म कहे हैं और पर्यायें, द्रव्य के आश्रय से हैं। इस प्रकार अभेदरूप से द्रव्य में सब समा जाता है।

यह बात वृक्ष का उदाहरण देकर समझावेंगे।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश द्रव्य का आलम्बन लेते हैं। उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है, उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु नहीं समा जाती, किन्तु अंशों के पिण्डरूप वस्तु है। वस्तु अंशी है और उत्पादादि से आलम्बित पर्यायें उसके अंश हैं। बीज, अंकुर और वृक्षत्व की भाँति।

'जिस प्रकार अंशी वृक्ष के बीज-अंकुर-वृक्षत्वरूप तीन अंश भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों द्वारा आलम्बित एक ही साथ भासित होते हैं, उसी प्रकार अंशी द्रव्य के नष्ट होता हुआ भाव, उत्पन्न होता हुआ भाव और अवस्थित भाव - ऐसे तीन अंश भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निजधर्मों द्वारा आलम्बित एक ही साथ भासित होते हैं।

वस्तु में उत्पाद भी अंश का है, व्यय भी अंश का है और ध्रुवता भी अंश की है। उस एक-एक अंश में सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं हो जाता अर्थात् द्रव्य की उत्पत्ति, द्रव्य का ही नाश या द्रव्य की ही ध्रुवता नहीं है। जिस प्रकार एक वृक्ष में बीज, अंकुर और वृक्षत्व - ऐसे तीन अंश हैं, उनमें बीज-अंश का व्यय, अंकुर -अंश का उत्पाद और वृक्षत्व-अंश की ध्रुवता है, वे तीनों अंश मिलकर झाड़ का (वृक्ष का) अस्तित्व है। उसी प्रकार आत्मवस्तु

में-सम्यक्त्व-अंश का उत्पाद, मिथ्यात्व-अंश का व्यय और श्रद्धापने की ध्रुवता है। इस प्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुव अंशों के हैं, अंशी के नहीं हैं। द्रव्य की अपेक्षा से ही उत्पाद नहीं है, किन्तु द्रव्य में उत्पन्न होनेवाले भाव की अपेक्षा से उत्पाद है; द्रव्य की अपेक्षा से व्यय नहीं है किन्तु पूर्व के नष्ट होनेवाले भाव की अपेक्षा से व्यय है और सम्पूर्ण द्रव्य की अपेक्षा से ध्रुवता नहीं है, किन्तु द्रव्य अखण्ड स्थायी भाव की अपेक्षा से (द्रव्यत्व की अपेक्षा से) ध्रुवता है। इस प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव प्रत्येक, अंश के आश्रित हैं। जिस क्षण वस्तु नवीन भाव से उत्पन्न होती है, उसी क्षण पूर्व भाव से व्यय को प्राप्त होती है और उसी क्षण द्रव्यरूप से ध्रुव रहती है, इस प्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों एक साथ ही अंशों के अवलम्बन से हैं, किन्तु अंशी के ही उत्पाद, व्यय अथवा ध्रुव नहीं है। यहाँ ध्रुव को भी अंश की अपेक्षा से पर्याय कहा है, किन्तु उसमें द्रव्य का सामान्य भाग है। परन्तु मात्र उस ध्रुव में ही सम्पूर्ण वस्तु का समावेश नहीं होता, इसलिए उसे भी अंश कहा है और अंश होने से पर्याय कहा है। इस अपेक्षा से ध्रुवता भी पर्याय के आश्रित कही गयी है।

यदि अंशी वस्तु के ही उत्पाद, व्यय या ध्रुव माने जाएँ तो उसमें दोष आता है और अन्धाधुन्धी हो जाती है। किस प्रकार दोष आता है, वह समझाते हैं।

द्रव्य का ही व्यय माना जाए तो—

यदि पूर्व के अंश का व्यय न मानकर द्रव्य का ही व्यय माना जाए तो (1) द्रव्य एक क्षण में नाश को प्राप्त हो जानेवाला हो

जाएगा, इसलिए एक क्षण में ही समस्त द्रव्यों का सर्वथा नाश हो जाएगा अथवा तो (2) सत् का ही नाश हो जाएगा।

यदि मिथ्यात्वपर्याय का नाश न मानकर आत्मद्रव्य का ही नाश माना जाए तो आत्मा एक क्षण में ही नाश को प्राप्त हो जाएगा, पहले क्षण के सत् का दूसरे क्षण नाश हो जाएगा। अंश का नाश है, उसके बदले अंशी का ही नाश मानने से एक क्षण में ही समस्त द्रव्यों का अभाव ही हो जाएगा, इसलिए द्रव्यों की शून्यता हो जाएगी, अथवा सत् पदार्थों का ही नाश हो जाएगा।

द्रव्य का ही व्यय मानने से (1) प्रथम तो द्रव्यों का सर्वथा अभाव सिद्ध होगा - यह दोष कहा, अथवा तो (2) 'भाव' का अभाव हो जाएगा - यह दूसरा दोष कहा। पहले में तो 'मात्र अभाव' कहा और दूसरे में 'भाव का अभाव' होना कहा, इसलिए द्रव्य का ही व्यय नहीं है, किन्तु द्रव्य के अंश का ही व्यय है। और वह अंश, अंशी का है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव अंशों के आश्रय से हैं और वे अंश, अंशी पदार्थ के आश्रित हैं, किन्तु किसी द्रव्य का कोई अंश दूसरे द्रव्य के आश्रित नहीं है, और विकारी या निर्विकारी किसी भी भाव का उत्पाद-व्यय भी दूसरे के आश्रित नहीं है, किन्तु उस-उस पर्याय के ही आश्रित है। राग का उत्पाद कर्म के आश्रय से नहीं है, किन्तु उस समय की पर्याय के आश्रित है। इस जीव के मिथ्यात्व का व्यय देव-गुरु के आश्रित नहीं है, किन्तु पूर्व पर्याय के आश्रित ही है। इस प्रकार पर्यायें स्वयं ही उत्पाद-व्यय -ध्रुव का आश्रय हैं।

द्रव्य का ही उत्पाद माना जाए तो—

यदि अंश का उत्पाद न मानकर द्रव्य का ही उत्पाद माना जाए तो क्षणिक पर्याय ही द्रव्य हो जाएगी, इसलिए प्रतिक्षण नवीन -नवीन द्रव्य ही उत्पन्न होने लगेगा। द्रव्य की अनन्त पर्यायों में से प्रत्येक पर्याय स्वयं ही द्रव्य हो जाएगी। इसलिए एक द्रव्य को ही अनन्त द्रव्यपना आयेगा। अथवा तो वस्तु के बिना असत् का ही उत्पाद होने लगेगा। मिट्टी में घट अवस्था उत्पन्न होती है, किन्तु मिट्टी स्वयं उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार वस्तु में उसके नवीन परिणाम उत्पन्न होते हैं, किन्तु वस्तु स्वयं उत्पन्न नहीं होती। एक अंश के उत्पाद को यदि द्रव्य ही माना जाए तो एक पर्याय स्वयं ही सम्पूर्ण हो जावेगी; इसलिए द्रव्य की अनन्त पर्यायें वे अनन्त द्रव्य हो जावेंगे। इस प्रकार एक द्रव्य को ही अनन्त द्रव्यपना हो जाएगा, यह दोष आता है। हाँ, एक द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं और एक द्रव्य की अनन्त पर्यायें भी होती हैं, किन्तु एक द्रव्य के अनन्त द्रव्य नहीं होते। द्रव्य की पर्याय नवीन उत्पन्न होती है किन्तु स्वयं द्रव्य नवीन उत्पन्न नहीं होता। यदि द्रव्य स्वयं उत्पन्न हो तो असत् की ही उत्पत्ति होगी। इस प्रकार द्रव्य का ही उत्पाद मानने में दो दोष आते हैं। प्रथम तो, एक ही द्रव्य अनन्त द्रव्यरूप हो जाएगा, और दूसरे असत् की ही उत्पत्ति होगी। इसलिए उत्पाद, द्रव्य का ही नहीं है किन्तु उत्पन्न होनेवाले भाव का है, और उस उत्पन्न होनेवाले भावरूप अंश द्रव्य का है।

द्रव्य का ही ध्रौव्य माना जाए तो—

यदि सम्पूर्ण द्रव्य को ही ध्रुव माना जाए तो क्रमशः होनेवाले

उत्पाद-व्यय भावों के बिना द्रव्य का ही अभाव हो जाएगा अथवा द्रव्य को क्षणिकपना हो जाएगा। वस्तु मात्र ध्रुवरूप नहीं है किन्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है। उसके बदले मात्र ध्रुव अंश को ही वस्तु मान लिया और अंशी को नहीं माना तो द्रव्य क्षणिक हो जाएगा। इसलिए वस्तु ही ध्रुव नहीं है, किन्तु वस्तु का एक अंश ध्रुव है।

एक ही समय में उत्पाद-व्यय होते हैं, किन्तु वे उत्पाद-व्यय एक ही समय की पर्याय के नहीं हैं, एक समय में उत्पाद वर्तमान पर्याय का है और व्यय पूर्व पर्याय का है। एक ही समय में जिसका व्यय है, उसका उत्पाद नहीं है और जिसका उत्पाद है, उसका व्यय नहीं है। उत्पाद से आलम्बित पृथक् पर्याय है और व्यय से आलम्बित पृथक् पर्याय है, किन्तु उन उत्पाद-व्यय दोनों का काल एक ही है। जिस समय जिस पर्याय का उत्पाद नहीं है और जिस समय जिस पर्याय का उत्पाद है, उसी समय उसका व्यय नहीं है। एक का व्यय और दूसरी का उत्पाद, दूसरी का व्यय और तीसरी का उत्पाद - इस प्रकार होने से वे क्रमशः होनेवाले भाव हैं। जब बीज का व्यय हो, तब अंकुर का उत्पाद होता है, इसलिए बीज और अंकुर क्रमशः होनेवाले भाव हैं, उन के बिना वृक्ष की ध्रुवता नहीं रहती। उत्पाद-व्यय के बिना क्रमशः होनेवाले भाव नहीं बन सकते और क्रमशः होनेवाले भावों के बिना द्रव्य का अस्तित्व नहीं रह सकता। जिसने मात्र द्रव्य को ही ध्रुव मान लिया है, उसके द्रव्य में पूर्व पर्याय का व्यय और पीछे की पर्याय का उत्पाद - ऐसे क्रमशः होनेवाले भाव नहीं रहते। पूर्व का व्यय और पीछे का उत्पाद - ऐसे क्रमशः होनेवाले भावों के बिना उसका ध्रुवतत्त्व कहाँ स्थिर

रहेगा ? इसलिए उसे ध्रुव द्रव्य का ही अभाव हो जाएगा, अथवा तो उसके मत में द्रव्य क्षणिक ही हो जाएगा। इस प्रकार द्रव्य का ही ध्रुव मानने में भी दोष आता है। ध्रुवता द्रव्य की ही नहीं है, किन्तु द्रव्य के स्थायी अंश की है।

उत्पाद, व्यय और ध्रुव - यह तीनों एक साथ हैं, किन्तु वे अंशों के हैं, द्रव्य के नहीं हैं।

उत्पाद-व्यय और ध्रुव इन तीनों को एक साथ न मानकर मात्र उत्पाद को, व्यय को या ध्रुव को ही माने तो कौन से दोष आते हैं, यह बात 100 वीं गाथा में बतलायी थी।

यहाँ, द्रव्य का ही उत्पाद, द्रव्य का ही व्यय और द्रव्य की ही ध्रुवता माने तो कौन से दोष आते हैं, वह इस 101वीं गाथा में बतलाया।

इस (101वीं) गाथा में आचार्यदेव को यह सिद्ध करना है कि उत्पाद, व्यय और ध्रुव यह द्रव्य से पृथक् कोई पदार्थ नहीं है, किन्तु द्रव्य में ही उन सबका समावेश हो जाता है।

(1) यदि द्रव्य का ही उत्पाद मान लिया जाए तो व्यय और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा और दोष आ जाएगा।

(2) यदि द्रव्य का ही व्यय मान लिया जाए तो उत्पाद और ध्रुव का समावेश द्रव्य में नहीं होगा और दोष आ जाएगा।

(3) यदि द्रव्य का ही ध्रौव्य मान लिया जाए तो उत्पाद और व्यय का समावेश द्रव्य में नहीं होगा और दोष आ जाएगा।

इसलिए, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्वारा पर्यायें आलम्बित हों और

पर्यायों द्वारा अन्य आलम्बित हो कि जिससे यह सब एक ही द्रव्य हो। आचार्यदेव ने न्याय और युक्तिपूर्वक वस्तुस्वरूप सिद्ध किया है। द्रव्य स्वयं ही उत्पन्न नहीं होता, स्वयं ही नाश को प्राप्त नहीं होता और स्वयं ही ध्रुव नहीं रहता, किन्तु उसके अंश का उत्पाद है, अंश का व्यय है और अंश की ध्रुवता है। इसलिए वे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य अंशों के (पर्यायों के) हैं और वे पर्यायें द्रव्य की हैं। इससे सब एक ही द्रव्य है। ●●